गाइण सिवदास एवं खिड़िया जगा कृत

राजस्थानी वचनिकाएं

[साहित्यिक एवं भाषा वैज्ञानिक अध्ययन]

लेखक
आलमशाह खान
एम ए, रिसर्च स्कॉलर
हिन्दी विभाग
महाराणा भूपाल कॉलेज उदयपुर (राजस्थान)

•

भूमिका
महाराजकुमार डा रघुवीरसिंह
एम ए, एल एल बी, डि लिट्

प्रकाशक
राजस्थान साहित्य अकादमी (संगम)
उदयपुर

प्रथम बार

मूल्य – ४ रु ७५ पैसे
सन् १९६४

भूमिका

मई १९६१ ई० में जब राजस्थान विश्वविद्यालय ने एम० ए० (हिन्दी) उत्तरार्द्ध परीक्षा के लिए लिखा गया श्री आलम शाह खान का शोध-लेख 'राजस्थानी की दो वचनिकाएं' परीक्षणार्थ मेरे पास भेजा तब मुझे कई नये अनुभव हुए। पीढ़ियों से राजस्थान में रहने के कारण लेखक को अहिन्दी भाषा भाषी तो नहीं कहा जा सकता है परन्तु राजस्थान के मुसलमान प्रायः खड़ी बोली ही अधिकतर बोलते-लिखते रहे हैं राजस्थानी अथवा डिंगल की ओर उन्होंने कभी विशेष ध्यान नहीं दिया। इस कारण आलम शाह खान को राजस्थानी और डिंगल की ओर यों आकर्षित हुआ देखकर कुछ कौतूहल हुआ। अपने साथी सह-संपादक पं० काशीराम शर्मा के सहयोग से खिड़िया जयां की वचनिका का जो नया संस्करण तैयार किया गया था उसको प्रकाशित हुए तब चार-पांच माह भी नहीं बीते थे। अतः यह स्पष्ट था कि उसके प्रकाशन के समय यह शोध-लेख लिख लिया गया था। पुनः सिवदास गाडण कृत अचलदास खीची री वचनिका' तब भी अप्रकाशित ही थी। इन कारणों से भी मैं इस शोध-लेख को ध्यान पूर्वक पढ़ने को उत्सुक हो उठा।

इधर एम० ए० (उत्तरार्द्ध) परीक्षा या पी-एच० डी० डिग्री के लिये लिखे गये जो कई-एक शोध-ग्रंथ सामने आए हैं, उनमें प्रायः आधुनिक साहित्य के ही किसी सीमित पहलू विशेष का अध्ययन होता है। यदि किसी ने कभी मध्यकालीन साहित्य की ओर ध्यान दिया भी तो उस शोध-लेख में तद्विषयक साहित्य की ऊपरी-ऊपरी जानकारी का ही संकलन अधिकतर देखने को मिलता है। अतएव इस शोध-लेख में मध्यकालीन साहित्य के दो विख्यात ग्रंथों के इस सर्वांगीण अध्ययन की ओर मेरा विशेष ध्यान आकर्षित होना स्वाभाविक ही था।

अपनी विस्तृत प्रस्तावना में वचनिका साहित्य के प्रारंभ और विकास की पृष्ठ-भूमि प्रस्तुत करते हुए आलम शाह खान ने राजस्थानी पद्य के प्रभेदों और उनकी विभिन्नताओं पर भी प्रकाश डाला है। पुनः विक्रम की १६ वीं सदी में लिखी गई जैन वचनिकाओं का विवरण देकर इस शोध लेख में आलोचित दोनों वचनिकाओं के शोध की उल्लेखनीय कड़ियां भी प्रस्तुत कर दी हैं।

इस शोध-लेख को तैयार करने के लिये लेखक ने इन दोनों वचनिकाओं का सतत गहन अध्ययन किया है। इन वचनिकाओं में वर्णित घटनाओं की ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि की अत्यावश्यक जानकारी प्राप्त कर वचनिकाओं में प्रस्तुत वस्तु-विवेचन तथा

चरित्र-चित्रणों की उसने उपयुक्त जांच की है। मूल ग्रंथों को ध्यानपूर्वक पढ़ कर उनको ठीक तरह समझने और उनका सही अर्थ निकालने का उसने पूरा-पूरा प्रयत्न किया है। पुनः इन दोनों वचनिकाओं के साहित्यिक समीक्षण के साथ ही उनका भाषा शास्त्रीय विवेचन भी लेखक ने किया है। अतः उस परीक्षण में आसम शाह खान को प्रथम श्रेणी के अंक मिले थे।

इधर इस शोध-लेख की रचना के बाद जहाँ जड़िया बाबा हत वचनिका का नया संस्करण मुद्रित हुआ, वहाँ शिवदास गाडण की वचनिका भी सादूल राजस्थानी रिसर्च इंस्टीट्यूट बीकानेर, से प्रकाशित हो गई है। अतः प्रकाशनार्थ इस शोध-लेख का संशोधन करने में लेखक ने उससे काम उठाया है। पुनः मूल शोध-लेख में तब रह गई छोटी मोटी त्रुटियों को भी दूर करने का उसने पूरा प्रयत्न किया है।

आज कई एक कारणों से राजस्थानी साहित्य का अध्ययन बहुत ही महत्त्वपूर्ण हो गया है। उसके बिना मध्यकालीन राजस्थान का राजनैतिक इतिहास कदापि ठीक नहीं लिखा जा सकेगा। राजस्थान के तत्कालीन समाज और जन साधारण के जीवन की पूरी-पूरी सही जानकारी के लिये तो राजस्थानी साहित्य, और इसमें भी विशेषतया कथा-वार्ता साहित्य का बहुत अध्ययन सर्वथा अनिवार्य हो गया है। राजस्थान के मध्यकालीन इतिहास तथा समाज की अनेकानेक उलझी हुई अबूझ पहेलियों का सही हल इस प्रकार के अध्ययन से ही संभव हो सकेगा।

अतः यह देख कर विशेष प्रसन्नता हुई कि राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर इस शोध-लेख को प्रकाशित कर रही है। मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि इस प्रकार अत्यावश्यक सहयोग और प्रोत्साहन पाकर लेखक राजस्थानी साहित्य के अध्ययन में अधिकाधिक अग्रसर होकर भविष्य में तद्विषयक और भी महत्त्वपूर्ण उपयोगी साहित्य की रचना करता रहेगा।

रघुवीर निवास'
सीतामऊ (मालवा),
७ दिसम्बर, १९६१ ई०

रघुवीरसिंह

वक्तव्य

बखतराम शाह-री वचनिका और वचनिका रा० रतनसिंघजी री महेसदासोतरी' राजस्थानी की महत्वपूर्ण और लोकप्रिय रचनाएं हैं। विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में रचित 'बखतराम शाह री वचनिका' राजस्थानी के चारणी गद्य की सर्व प्रथम रचना है और विक्रम सं० १७१५ में रचित रतनसिंघ री वचनिका चारणी कलात्मक-गद्य की प्रौढ़ कृति है। साहित्य इतिहास और भाषा-विज्ञान तीनों ही दृष्टियों से राजस्थानी साहित्य में इन दोनों रचनाओं का विशेष महत्व है।

प्रस्तुत निबंध के अध्ययन का विषय ये ही दोनों वचनिकाएं हैं। हमने अपने अध्ययन को इन दोनों कृतियों के साहित्य सौन्दर्य के उद्घाटन और भाषा शास्त्रीय विवेचन तक ही सीमित रखा है।

राजस्थानी-गद्य की दृष्टि से दोनों वचनिकाएं अत्यन्त ही महत्वपूर्ण हैं। 'गद्य प्रस्तावना' में संस्कृत से लेकर राजस्थानी तक के गद्य के विकास को संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है साथ ही राजस्थानी गद्य के विभिन्न रूपों का परिचय देते हुए तुकांत गद्य के उद्भव को भी स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

यह निबन्ध राजस्थानी भाषा के मर्मज्ञ विद्वान श्रद्धेय गुरुवर प्रो० नरोत्तमदास जी स्वामी के सामान्य निरीक्षण तथा आदरणीय प्रो० श्री कृष्णचन्द्रजी शोत्रिय के निर्देशन में लिखा गया है। निबन्ध प्रणयन में मेरे आदि गुरु श्री पुरुषोत्तमलालजी तिवारी और गुरुवर श्री राजकृष्णजी दूबड़ से मुझे बड़ी सहायता मिली है। तदर्थ मैं अपने इन गुरुजनों का आभारी हूं। श्रद्धेय मुनि श्री कांतिसागरजी ने भी समय-समय पर मार्ग-निर्देश करके और आवश्यक ग्रन्थ जुटा कर मेरी सहायता की है। अतः मैं उनका भी उपकृत हूं।

निबन्ध के प्रणयन में जिन विद्वज्जनों के ग्रंथों से मैंने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जो सहायता ली है उन सब के प्रति भी मैं कृतज्ञता प्रदर्शित करता हूं।

जिस समय यह निबन्ध लिखा गया था आलोच्य कृतियों पर कोई विशेष उल्लेखनीय कार्य नहीं हो पाया था। किन्तु अब 'बखतराम शाह री वचनिका' श्री दीनानाथ शर्मा और 'रा० रतनसिंघ महेसदासोत री वचनिका' श्री काशीराम शर्मा एवं डा० रघुवीरसिंह द्वारा संपादित होकर प्रकाशित हो चुकी हैं। वचनिकाओं के इन नव्य प्रकाशित संस्करणों के प्रकाश में निबन्ध में कतिपय आवश्यक संशोधन किये गये हैं। तदर्थ मैं इन विद्वानों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना अपना कर्तव्य समझता हूं।

इस निबन्ध के परीक्षक महाराज कुमार डा० रघुवीरसिंह रहे थे। उन्होंने अपने उदयपुर आवास के अवसर पर इसी निबन्ध के संदर्भ में मुझे याद किया और प्रथम साक्षात्कार में ही मेरा इतना उत्साहवर्धन किया कि मैं चकित रह गया। इस निबन्ध प्रणयन से जिस फल की मैंने आशा की थी वह तो लभ्य न हो सका किन्तु इसके माध्यम से एक महिम व्यक्तित्व की स्नेह-छाया मुझे अवश्य प्राप्त हो गई—और मैं इसीसे संतुष्ट हूं।

आदरणीय महाराज कुमार ने किंचित आग्रह भाव से न केवल इस निबन्ध के लिए अपनी भूमिका लिख भेजी अपितु अत्यावश्यक ऐतिहासिक टिप्पण प्रदान कर कृतियों की ऐतिहासिक जांच को सुदृढ़ एवं सर्वाङ्गपूर्ण बनाने में भी सहयोग दिया। उनके इस आग्रह के प्रति कोई औपचारिक बात कह कर मैं आभार-मुक्त होना नहीं चाहता।

राजस्थान साहित्य अकादमी के अध्यक्ष पं जनार्दनराय नागर, संचालक डा० सोमनाथ गुप्ता और अन्यान्य सुहृद सदस्य महानुभावों का भी मैं आभारी हूं जिनकी सदाशयता के परिणामस्वरूप यह निबन्ध प्रकाशित हो सका है।

हिन्दी विभाग
महाराणा भूपाल कॉलेज
उदयपुर (राजस्थान)
२० दिसम्बर १९६३

आलम शाह खान

विषय – सूची

प्रस्तावना — पृष्ठ १ से २०

(१) अचलदास खीची री वचनिका

१ कवि और कविकार — पृ० २१ से २६
२ साहित्यिक विवेचना — पृ० २७ से ४८
(क) वचनिका की कथा — २७
(ख) वस्तु विवेचन — ३१
(ग) चरित्र-चित्रण — ३४
(घ) अलंकार-सौंदर्य — ३८
(ङ) भाषा-शैली — ४०
(च) भावव्यंजना — ४६
३ भाषा शास्त्रीय अध्ययन — पृ० ४९ से ६०

(२) वचनिका रा० रतनसिंघजी महेसदासोतरी

१ कवि और कविकार — पृ० ६१ से ६६
२ साहित्यिक आलोचना — पृ० ६७ से १०७
(क) वचनिका की कथा — ६७
(ख) वस्तु विन्यास — ७०
(ग) वर्णन — ७४
(घ) चरित्र चित्रण — ७६
(ङ) अलंकार — ८२
(च) छन्द विचार — ८७
(छ) भाषा-शैली — ९१
(ज) भाव-व्यंजना — १०३
३ भाषा शास्त्रीय अध्ययन — पृ० १०७ से १२९
परिशिष्ट १ — पृ० १३०
परिशिष्ट २ — पृ० १३३
सहायक-ग्रन्थ सूची — पृ० १३६

प्रकाशकीय

प्रस्तुत पुस्तक 'राजस्थानी वचनिकाएँ' को श्री आलमशाह खान ने एम. ए. (हिन्दी) की परीक्षा के निमित्त शोध-निबन्ध (Dissertation) के रूप में हिन्दी, संस्कृत और राजस्थानी भाषा एवं साहित्य के पण्डित आचार्य नरोत्तमदास स्वामी के निदेशन में तैयार किया है।

प्रो० खान ने राजस्थानी साहित्य के विद्वानों की कतिपय सम्मतियों के आधार पर पुस्तक को प्रकाशन के लिये अंतिम रूप देने में भी बड़ा श्रम किया है। राजस्थानी साहित्य के शोध कार्य में उनकी विशेष रुचि है और आजकल वे महाकवि सूर्यमल्ल के विख्यात ग्रंथ 'वंश भास्कर' पर अपना शोध कार्य कर रहे हैं।

विषय प्रतिपादन और भाषा की दृष्टि से भी पुस्तक के महत्व को स्वीकार किया गया है।

आशा है सुधी पाठक इस पुस्तक का सम्मान करेंगे।

शांतिलाल भारद्वाज 'राकेश'
कार्यकारी निदेशक
राजस्थान साहित्य अकादमी (संगम)
उदयपुर (राजस्थान)

प्रस्तावना

भारतीय वाङ्मय में गद्य के दर्शन सर्वप्रथम वैदिक संहिताओं में होते हैं। संस्कृत गद्य का प्राचीनतम रूप यजुर्वेद और अथर्ववेद में मिलता है। गद्यात्मक मंत्रोंका संग्रह प्रधानतया यजुर्वेद में है। वैदिक गद्य की यह परम्परा ब्राह्मणों आरण्यकों एवं उपनिषदों तक चली गई है। इसके अनन्तर सूत्र साहित्य का गद्य आता है। महाभारत और पुराणों में भी यत्र-तत्र गद्य का प्रयोग हुआ है। पुराणों में इस दृष्टि से भागवत पुराण और विष्णुपुराण उल्लेखनीय हैं। भागवत का गद्य प्राचीन शैली का है, उसमें प्राचीनता का पुट है। विष्णु-पुराण का गद्य अपेक्षाकृत सरल है।

(क) लौकिक संस्कृत का गद्य

पुराणों के पीछे के गद्य को चार विभागों में विभक्त किया जा सकता है—

१ शास्त्रीय-गद्य

२ नीति-कथाओं का गद्य

३ मनोरंजन कथा-साहित्य का गद्य और

४ साहित्यिक या कला-पूर्ण गद्य।

१ शास्त्रीय या वैचारिक गद्य भाष्यों, व्याख्याओं, टीकाओं और ग्रंथों के रूप में प्रयुक्त हुआ है। पतंजलि का महाभाष्य शंकर का वेदान्त-सूत्र भाष्य और शबर स्वामी का मीमांसा-भाष्य शास्त्रीय गद्य की सुन्दर रचनाएं हैं। आगे चल कर नैयायिकों के हाथों में पड़ कर यह गद्य विकृत और कृत्रिम हो गया है।

२ नीति कथाओं के गद्य को सब से प्रमुख रचना पंचतंत्र है। उसके अनेक रूपांतर भाषांतर बने। हितोपदेश पंचतंत्र का ही एक रूपांतर माना गया है। नीति कथाओं के गद्य के साथ साथ बीच बीच में पद्य भी पाया जाता है। बौद्ध जातकों के आधार पर रचित आर्यशूर के जातक-माला ग्रन्थ को भी इस कोटि में रखा जा सकता है, यद्यपि उसकी शैली अपेक्षाकृत कठिन है। मिथिला के सुप्रसिद्ध विद्यापति की 'पुरुष परीक्षा' भी इसी प्रकार की नीति-कथामय रचना है।

३ नीति-कथाओं से मिलता-जुलता मनोरंजक कथाओं का साहित्य है। ऐसी रचनाओं में विक्रम चरित सिंहासन-द्वात्रिंशिका या द्वात्रिंशत् पुत्तलिका, वेताल पंचविंशतिका, शुक सप्तति भोज-प्रबन्ध उल्लेखनीय हैं।

४ वैदिक काल से जो सीधा-सादा गद्य चला आ रहा था लौकिक संस्कृत में उसे अलंकृत करने की प्रवृत्ति आगई । अब गद्य में भी कला एवं कवित्व का संचार करके उसे पद्य का-सा ललित और रम्य बनाने का प्रयास किया जाने लगा । कालांतर में अलंकरण और कवित्व संस्कृत-गद्य में इतने प्रमुख एवं विशिष्ट बन गये कि उसे गद्य काव्य' की संज्ञा से अभिहित किया जाने लगा । गद्य लेखन को जो कवियों की कसौटी 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' कहा गया है उसका कारण भी संस्कृत-गद्य की यही कला प्रधानता है । आचार्य वामन ने अपने काव्यालंकार-सूत्र में संस्कृत-गद्य के जो तीन भेद वृत्तगन्धि, चूर्णिका एवं उत्कलिका प्राय किये हैं उनका आधार भी संभवतः गद्य की यही प्रवृत्ति है । वृत्तगन्धि का लक्षण उन्होंने यह दिया है 'पद्यभागवद् वृत्तगन्धि' [१ ३ २३] अर्थात् वृत्तगन्धि गद्य का वह रूप है जिसमें किसी पद्य या छंद के अंश विद्यमान रहते हैं । पाताललताकुलल-वासिषु वातेषु । इस उद्धरण में वसंततिलका छंद का अंश स्पष्ट लक्षित होता है । चूर्णक गद्य का वह रूप है जिसमें छोटे-छोटे समस्त और ललित गद्य-खण्ड हों । उत्कलिका प्राय' चूर्णक के विपरीत आकर्ष और कठोर गद्य होता है अर्थात् उसमें बड़े बड़े समास और कठोर पद होते हैं ।[1]

कालात्मक गद्य के दो भेद हैं—(१) आख्यायिका और (२) कथा । भामह और दण्डी ने अलंकृत गद्य-काव्य के लिए 'कथा' शब्द का प्रयोग किया है ।[2] इस साहित्य की परम्परा बहुत प्राचीन है । कात्यायन ने आख्यायिका का उल्लेख किया है । पतंजलि के महाभाष्य में वासवदत्ता और सुमनोत्तरा नामक आख्यायिकाओं और भैमरथी नामक कथा का उल्लेख हुआ है । इनके अतिरिक्त बरकचिरुत वासवदत्ता सौमिल कृत सुरक-कथा आदि कई एक कथाओं का उल्लेख मिलता है । परन्तु उक्त सभी कृतियों के केवल उल्लेख ही प्राप्त हुए हैं । कोई कृति अभी तक उपलब्ध नहीं हुई ।

कलात्मक—गद्य के प्रारंभिक दर्शन रुद्रदामा के गिरनार शिला-लेख में होते हैं, जिसका समय संवत् २०० के लगभग है । हरिषेण-कृत समुद्रगुप्त की प्रशस्ति (लगभग संवत् ४३२) भी इस कलात्मक या अलंकृत गद्य का अच्छा उदाहरण उपस्थित करती है ।

सुबन्धु की वासवदत्ता कथा कलात्मक गद्य की सर्व प्रथम उपलब्ध रचना है । सुबन्धु का समय संवत् ६२० के लगभग है । संस्कृत गद्य के सर्वश्रेष्ठ लेखक बाणभट्ट हैं । उनकी दो रचनाएं प्रसिद्ध हैं—(१) हर्ष चरित् और (२) कादम्बरी । हर्षचरित आख्यायिका है और कादम्बरी कथा । कादम्बरी में संस्कृत गद्य अपने पूर्ण सौंदर्य को पहुँचा है ।

१—व्याख्याकार श्री० विश्वेश्वर : संपा० डा० नगेन्द्र : हिन्दी काव्यालंकार सूत्र पृ० २०
२—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य का आदिकाल पृ० ६७

दण्डी—(लगभग संवत् ७५७) कृत दशकुमार चरित एक मर्यादावादी आख्यायिका है जिसका गद्य व्यावहारिकता के निकट है।

उत्तरकालीन कृतियों में भगपाखकृत तिलक मंजरी (दसवीं शताब्दी) वादीभसिंह-कृत गद्य चिन्तामणि (दसवीं शताब्दी) सोड्ढल-कृत उदयसुन्दरी-कथा आदि उल्लेखनीय हैं।

कलात्मक—गद्य का एक रूप चम्पू-काव्यों में मिलता है, जिनमें गद्य के साथ पद्य भी निश्चित रहता है। चम्पू-काव्यों में सबसे प्राचीन त्रिविक्रम-भट्ट का नलचम्पू (दसवीं शताब्दी) है।

(ख) बौद्ध और जैनों का गद्य

महायानी बौद्धों ने भी संस्कृत गद्य को अपनाया और प्रचुर गद्य-साहित्य की रचना की। ललित-विस्तार अवदानशतक, जातकमाला आदि महत्वपूर्ण बौद्ध रचनाएं हैं। इनकी शैली साहित्यिक है जो स्थान-स्थान पर अलंकृत बन गई है। विशेष रूप से जातकमाला में काव्यत्व प्रधान है। इसमें चम्पू का पूर्व रूप देखा जा सकता है।

जैनों द्वारा लिखित संस्कृत-गद्य साहित्य भी पर्याप्त मात्रा में मिलता है। जैन साहित्य विशेषतः कहानी प्रधान है। जैन गद्य-साहित्य का एक महत्वपूर्ण रूप जिसमें ऐतिहासिक अथवा अर्धैतिहासिक व्यक्तियों के जीवन की घटनाओं का वर्णन होता है प्रबन्ध है। भद्रबाहु व सूरि की प्रबंध चिन्तामणि और राजशेखर का प्रबन्ध कोष जैनों की उल्लेखनीय कृतियां हैं।

(ग) संस्कृतेतर भाषाओं में गद्य

पालि—बौद्धों की धर्म भाषा पालि में प्रचुर गद्य-साहित्य रचा गया। साहित्य की दृष्टि से जातक-कथाओं का विशेष महत्व है।

प्राकृत—कुमार ने पालि को छोड़कर प्राकृतों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है।[1]

महाराष्ट्रीय।
शौरसेनी।
मागधी।
अर्ध मागधी।
जैन महाराष्ट्रीय।
जैन शौरसेनी।

इनमें से प्रथम तीन को नाटकीय प्राकृत और शेष तीन को जैन प्राकृत कहा गया है।

१—एर्कं ड वी कुमार : इण्ट्रोडेक्शन टु प्राकृत पृ० ४

इन सब प्राकृतों में शौरसेनी साधारणतया गद्य की प्राकृत थी। यद्यपि यदा-कदा इसके दर्शन पद्य में भी होते दिखाई पड़े किन्तु नाटकों के बाहर इसका प्रयोग बाद की अपेक्षा पहले अधिक था। जैनों ने महाराष्ट्री का प्रयोग कभी-कभी गद्य और पद्य दोनों में किया यद्यपि शौरसेनी गद्य के सामने महाराष्ट्री का गद्य नगण्य था।[1]

इस प्रकार यद्यपि प्राकृतों में प्रधानता पद्य की ही थी फिर भी उनमें गद्य का नितांत अभाव नहीं था। भामह और दण्डी द्वारा निर्दिष्ट कथा के लक्षणों को देखकर डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने विचार व्यक्त किया है कि 'भामह और दण्डी ने लक्ष्य को देखकर ही लक्षण बनाए होंगे। उनके अपने वक्तव्यों से ही स्पष्ट है कि वे प्राकृत और अपभ्रंश भाषा में लिखे गये काव्यों से परिचित थे। इसलिए कथा लक्षण लिखते समय उनके सामने प्राकृत और संस्कृत की पुस्तकें अवश्य वर्तमान थीं।' आगे उन्होंने लिखा है कि— प्राकृत में लिखी कथाएं पद्य-बद्ध भी होती थी और गद्य में भी लिखी जाती थी। बृहद्-कथा (पैशाची प्राकृत में लिखित अप्राप्य ग्रंथ) के सम्बन्ध में कुछ निश्चित रूप से कहना कठिन है कि यह गद्य में लिखी गई थी या पद्य में परन्तु वसुदेव-हिण्डि' नामक गद्य-निबद्ध प्राचीन प्राकृत कथा उपलब्ध हुई है जो यह सूचित करने के लिये पर्याप्त है कि प्राकृत में गद्य-बद्ध कथाएं अवश्य लिखी जाती थी।[2]

अपभ्रंश—अपभ्रंश में गद्य-साहित्य का प्रायः अभाव है। पर लोक भाषाओं के उदय के साथ गद्य का पुनः अभ्युदय होने लगा। प्रो० हरीवल्लभजी स्वामी के मतानुसार अपभ्रंश की गद्य-कृति कीर्तिलता (विद्यापतिकृत) लोकभाषाओं के उत्थान के बाद की रचना है जिनमें मैथिली का प्रभाव गद्य-रूप दिखाई पड़ता है।

अपभ्रंश गद्य की महत्वपूर्ण रचना कीर्तिलता ही है पर उद्योतन सूरि कृत कुवलयमाला-कथा (वि० सं० ८३५) और 'जयसुन्दरी प्रयोगमाला' (१३वीं शताब्दी) नामक वैद्यक ग्रंथ में भी कहीं-कहीं अपभ्रंश-गद्य का प्रयोग मिलता है।

१— ...Courseni was normally the Prose Prakrit Though it appears to have been occasionally used in verse its employment in prose out side the drama was probably once much wider than was later the case when the Jains used a form of Maharastri for prose as well as for verse though the presence of courseni forms in prose suggests that Maharastri is here intrasine "

(*Introduction A History of Sanskrit Literature*—A B Keith—Page 27)

२—डा हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य का आदिकाल पृ० ३७ ३६

आगे चल कर लोक-भाषाओं के उत्थान के साथ गद्य का जो स्वरूप निर्मित हुआ है उसमें धीरे-धीरे संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग बढ़ता चला गया है। इस विषय में डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत है कि 'नवीं-दसवीं शताब्दी से ही बोलचाल की भाषा में तत्सम-शब्दों के प्रवेश के प्रमाण मिलने लगते हैं और १४वीं शताब्दी के प्रारंभ से तो तत्सम-शब्द निश्चित रूप से अधिक मात्रा में व्यवहृत होने लगे।'[1]

(ग) राजस्थानी भाषा में गद्य :

✓राजस्थानी का गद्य साहित्य बहुत प्राचीन है। १४वीं शताब्दी से आज तक राजस्थानी में गद्य-साहित्य की रचना होती आई है। यह जितना प्राचीन है उतना ही विस्तृत भी। राजस्थानी में सम्पूर्ण प्राप्त गद्य-साहित्य को ३ प्रमुख भागों में विभक्त किया जा सकता है।

१ धार्मिक गद्य-साहित्य

राजस्थान का धार्मिक गद्य-साहित्य दो रूपों में मिलता है (क) जैन और (ख) पौराणिक। प्रथम में कथात्मक अंश अधिक है। पौराणिक गद्य अनुवाद रूप में अधिक मिलता है।

(क) जैन-धार्मिक-गद्य टीकाओं के रूप में भी मिलता है और स्वतन्त्र रूप में भी। टीकाएं दो रूपों में भी मिलती हैं—(१) बालावबोध और (२) टब्बा। बालावबोध का अभिप्राय सरल और सुबोध टीका से है। इनमें मूल की व्याख्या ही नहीं है अपितु मूल सिद्धान्तों को स्पष्ट करने वाली कथाएं भी होती हैं। ये बालावबोध सैकड़ों की संख्या में लिखे गये और लोकप्रिय भी हुए। टब्बा बालावबोध से बहुत संक्षिप्त होता है। इसमें मूल शब्द का अर्थ उसके ऊपर नीचे या बाजू में दिया जाता है।

(ख) पौराणिक धार्मिक गद्य साहित्य पौराणिक ग्रंथ या उनके आधार पर लिखे गये रामायण महाभारत भागवत, बृहत्-कथा धर्म-शास्त्र कर्मकाण्ड, स्तोत्र आदि ग्रंथों के अनुवाद रूप में मिलता है। अधिकांश उपलब्ध अनुवाद १७ वीं शती के पीछे के हैं। प्राचीनता और विषयता दोनों ही दृष्टियों से जैनों की रचनाएं महत्वपूर्ण हैं।

२. ऐतिहासिक गद्य-साहित्य :

(क) जैन ऐतिहासिक गद्य—जैन विद्वानों ने ऐतिहासिक गद्य भी प्रचुर मात्रा में रचा है। यह मुख्यतः पट्टावली, वंशावली दफ्तर बही ऐतिहासिक-टिप्पण और उत्पत्ति ग्रंथ के रूप में मिलता है। पट्टावली में जैनाचार्यों की परम्परा का इतिहास रहता है, वंशावली में किसी जाति विशेष की वंश परम्परा का वर्णन होता है दफ्तर बही में

१—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य का आदिकाल पृ० १८

समय समय के विहार और दीक्षादि की बातों को लिपि बद्ध किया जाता था, ऐतिहासिक टिप्पण में जैनाचार्य ऐतिहासिक विषयों को छुट-पुट रूप में लिखा करते थे और उत्पत्ति ग्रंथों में किसी मत, पन्थ आदि की उत्पत्ति का इतिहास रहता है।

(ख) जैनेतर ऐतिहासिक गद्य—जैनेतर ऐतिहासिक गद्य भी अनेक रूपों में मिलता है। जिनमें से प्रमुख रूप निम्न लिखित हैं :—

१ ख्यात—डा. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के अनुसार राजपूताने में 'ख्यात' ऐतिहासिक गद्य रचना को कहा जाता है।[1] 'ख्यात' में राजपूत राजाओं का इतिहास या प्रमुख घटनाओं का संकलन वंशक्रमानुसार या राज्य क्रमानुसार रहता है जैसलमेर री ख्यात, दयालदास री ख्यात, बांकीदास री ख्यात आदि राजस्थानी भाषा की महत्वपूर्ण गद्य रचनाएं हैं।

२ बात—राजस्थानी में 'बात' कथा या कहानी का पर्याय है। राजस्थानी की हजारों की संख्या में बातों की रचना हुई है। प्रो. नरोत्तमदासजी स्वामी के शब्दों में इन सब का संग्रह किया जाय तो न जाने कितने कथासरित् सागर या सहस्र रजनी चरित्र तैयार हो जायं।

३ पीढियावली—वंशावली—इनमें किसी वंश में होने वाले व्यक्तियों के नाम ही क्रमशः संग्रहीत होते हैं। कुछ पीढियावलियों में व्यक्ति के नाम के साथ उसके महत्वपूर्ण कार्य का भी उल्लेख किया गया है। राजवंशों के अतिरिक्त सेठ-साहूकारों सरदारों आदि की भी वंशावलियां मिलती हैं। उदाहरणार्थ 'राजाओं री वंशावली' 'बीकी बाजा रा राजेसर री पीढियां' 'सीसोदियां री वंशावली' 'ओसवालां री वंशावली' आदि।

४ हाल, अहवाल, हकीगत, मावदास्त, तहकीकात आदि—इनमें घटनाओं का सविस्तार वर्णन रहता है। जैसे 'सांवला बहियां सू आपसू मिला तेरो हाल' 'पातसाह औरंगजेब री हकीकत' 'राव अमराजी बैठोकिया री बात' आदि।

३ कथात्मक गद्य साहित्य

कथात्मक गद्य साहित्य के अन्तर्गत बात वचनिका, वर्णक-ग्रंथ आदि हैं।

१ बात संस्कृत 'वार्ता'—से उद्भूत है जिसका अर्थ कथा है। राजस्थान में 'बातें' बहुत प्राचीनकाल से कही सुनी जाती हैं। १७ वीं शताब्दी के अंत या १८ वीं शताब्दि के प्रारम्भ से राजस्थानी कथाओं को लिपि-बद्ध किये जाने के प्रमाण मिलते हैं।

२ वर्णक ग्रन्थों को वर्णन-कोष—कहना ही संगत होगा। इनमें नाना प्रकार के वर्णन आये हैं जैसे नगर-वर्णन विवाह-वर्णन भोज-वर्णन ऋतु वर्णन युद्ध-वर्णन

१—डा. गौरीशंकर हीराचंद ओझा – जैसलमेर की ख्यात भाग दो – भूमिका

माहेट-वर्णन आदि। 'राजान राउत री बात-बणाव' 'बीबी गंगेव नाबावत री दोपहरी' 'मुक्तमानुप्रास', 'कुतुहल' 'सबा-भू यार' आदि इसी प्रकार के ग्रन्थ हैं।

वचनिका और दवावैत पर आगे सविस्तार प्रकाश डाला जायेगा।

४ वैज्ञानिक गद्य-साहित्य

राजस्थानी गद्य में वैज्ञानिक साहित्य—या तो अनुवाद के रूप में मिलता है या टीका के रूप में। आयुर्वेद ज्योतिष जड़ुमावली सामुद्रिक-शास्त्र, तंत्र-मंत्र आदि अनेक विषयों के संस्कृत ग्रंथों के राजस्थानी अनुवाद या इन्हीं के आधार पर लिखी हुई राजस्थानी गद्य की रचनाएं मिलती हैं।

५ प्रकीर्णक गद्य साहित्य

इसके अंतर्गत पत्रों और प्रतिलिपियों में प्रयुक्त गद्य लिया जा सकता है। दस्तावेज वंश वृत्त राजकीय पत्र व्यवहार में उपलब्ध हैं। प्रशस्ति-लेख शिला-लेख ताम्र-पत्र आदि में संस्कृत का प्रयोग ही अधिक मिलता है पर उनमें राजस्थानी गद्य का भी प्रयोग हुआ है।

राजस्थानी गद्य का काल विभाजन

राजस्थानी गद्य-साहित्य के विकास क्रम को डा० शिवस्वरूप शर्मा ने अपने शोध-प्रबन्ध 'राजस्थानी गद्य साहित्य का विकास और इतिहास' में तीन कालों में विभाजित किया है। यथा—

प्राचीन काल

[क] प्रयास-काल—(सं० १३०० से सं० १४०० तक)

[ख] विकास-काल—(सं० १४०० से १६०० तक)

२ मध्य-काल—विकसित-काल (सं० १६०० से सं० १९५० तक)

३ आधुनिक-काल—(सं० १९५० से अब तक)

प्राचीनकाल

(क) प्रयास-काल—प्रयासकाल के राजस्थानी गद्य का महत्व उसकी प्राचीनता की दृष्टि से है। इस काल में गद्य-शैली में कई प्रयोग हुए जिनमें जैन विद्वानों का ही हाथ रहा। इस काल की प्रमुख रचनाएं ये हैं —

आराधना (सं० १३३०)

बाल-शिक्षा (सं० १३३६)

अतिचार (सं १३४०)

नवकार व्याख्यान (सं० १३५८)

चर्चरीगर्भ नमस्कार स्तवन (सं० १३५६)

अतिचार (सं० १३६६)

तत्व विचार प्रकरण (लगभग १४ वीं शताब्दी)

धनपाल कथा (लगभग १४ वीं शताब्दी)

अभिव्यक्ति प्रणाली भाव संगठन वाक्य विन्यास एवं भाषा-स्वरूप की दृष्टि से राजस्थानी का यह प्रारम्भिक गद्य हिन्दी भाषा के विकास को समझने में पर्याप्त सहायता देता है।

(ख) विकास काल—यह राजस्थानी गद्य का प्रगति काल है। इस काल में गद्य एक निश्चित स्वरूप ग्रहण कर लेता है। प्रयास काल के प्रयोग अब समाप्त होगये। शैली में सुघरापन आया और भाषा संयत एवं स्पष्ट होकर प्रवाहमयी बनने लगी। इससे पूर्व गद्य स्फुट और टिप्पणियों या वार्तालापों के रूप में ही लिखा गया था, अब उसमें ग्रंथ रचना भी होने लगी। इस काल में भी जैनों ने ही प्रचुर गद्य कृतियों का निर्माण किया पर जैनेतर लेखकों का योगदान भी कम नहीं रहा। धार्मिक ऐतिहासिक कलात्मक और वैज्ञानिक सभी प्रकार की गद्य रचनाएं इस काल में रची गईं।

विकास-काल की प्रथम प्रौढ़ गद्य रचना आ० तरुण-प्रभसूरि कृत पडावश्यक बालावबोध' (सं० १४११) है। कलात्मक गद्य की प्रथम रचना माणिक्यचन्द्र सूरिकृत पृथ्वीचन्द्र चरित-प्रबंध नाम 'वाग्विलास' (सं० १४७०) भी इसी काल की रचना है। चारणी कलात्मक-गद्य की प्रथम रचना शिवदास कृत अचलदास खीची री वचनिका' (सं० १४९०) भी इसी काल में मिलती है। जिन समुद्रसूरि और शांतिसागर सूरि की दो जैन वचनिकाएं जिनका उल्लेख आगे किया जायगा भी इसी काल में रची गईं। श्री जिनवर्धन सूरि कृत पूर्वावली (सं १४८९) इस काल की तपागच्छ जैनाचार्यों से सम्बन्धित एक ऐतिहासिक रचना है। इसकी भाषा अंत्यानुप्रासयुक्त प्रवाहमय एवं रंजनकारी है। कुल-मण्डन-कृत मुग्धावबोध औक्तिक (सं १४९०) इस काल का प्रमुख व्याकरण ग्रंथ है। गणितसार (सं० १४९६) एवं गणपति विद्यातिका बालावबोध (सं० १४७६) इस समय में वैज्ञानिक गद्य का सुन्दर स्वरूप प्रस्तुत करते हैं।

विकास-काल के अन्य प्रमुख गद्य लेखकों में सोम सुन्दर सूरि (सं० १४३०-१४९९) मेरुसुन्दर खरतरगच्छ (१६वीं शताब्दी का प्रारम्भ) और पार्श्वचन्द्र सूरि (सं० १५३७-१६१२) के नाम उल्लेखनीय हैं। इन तीनों जैनाचार्यों ने पृथक-पृथक कई एक बालावबोधों की रचना कर राजस्थानी गद्य को एक निश्चित गति और विकास प्रदान किया।

२. मध्य-काल—विकसित-काल

विकसित-काल राजस्थानी गद्य के चरम उत्कर्ष का काल है। इस काल में भाषा प्रौढ़ और परिमार्जित हुई शैली में विचार आया और वह सुबोधातिसूक्ष्म भावों की

अभिव्यंजना का सामर्थ्य भी बढ़ाने लगी। वचनिका और दवावैत गद्य शैलियों का विकास यहीं आकर हुआ। मौलिक टीका और अनुवाद तीनों रूपों में अवश्य के साथ गद्य रचनाएं होने लगीं, जिससे राजस्थानी भाषा का भण्डार इतना समृद्ध हो गया कि वह भारतीय लोक-भाषाओं के गद्य साहित्य के मध्य अपना पृथक और स्वतंत्र स्थान पाने का अधिकारी बन सके। अभिलेखीय या पत्रात्मक गद्य भी इस काल में प्रचुर मात्रा में लिखा गया।

इस काल की सबसे महत्वपूर्ण रचना जयसिंहिया कृत वचनिका' राठौड़ रतनसिंहजी री महेसोतरी (सं० १७१२) है। इसमें प्रयुक्त गद्य राजस्थानी-गद्य का सर्वोत्कृष्ट नमूना है। इस काल की अन्यान्य महत्वपूर्ण गद्य रचनाओं में 'कुतुबुद्दीन सहजादे की बात' (१७वीं शताब्दी) राज रूपक' (सं० १७८८) १८वीं शताब्दी में रचित 'सभा-मंडार', 'कुतुबुलप', 'जीवीनदेव नीवायत रो दो पहरो' राजान रावत रो बात वखाण आदि प्रमुख हैं। १७वीं शताब्दी के अंत या १८वीं शताब्दी के प्रारम्भ में हमें 'दवावैत' संज्ञा से राजस्थानी गद्य-शैली के एक विशेष प्रकार के दर्शन होने लगते हैं। इस पर हम आगे अलग स्थान विचार करेंगे। कवि बख्तावर कृत बेहर-प्रकाश' (सं० १६९६) और 'शिखर संबोधनि (२०वीं शताब्दी) भी विकसित काल की उल्लेखनीय रचनाएं हैं।

३ आधुनिक-काल

आधुनिक काल में भी राजस्थानी की गद्य धारा अवरुद्ध नहीं हुई है। विकास काल के अंतिम चरण में गद्य-लेखन अवश्य शिथिल होगया था अब फिर से राजस्थानी गद्य अपना वेग लेता हुआ दीख रहा है। नाटक उपन्यास कहानी, रेखा-चित्र आदि सभी साहित्यिक विधाओं का विकास होरहा है। हां, निबन्ध के क्षेत्र में वह अभी आगे नहीं बढ़ पाया है।

२ तुकान्त गद्य

(क) तुकान्त-गद्य

संस्कृत का गद्य-साहित्य अतुकान्त है। तुकान्त गद्य का आरंभ अपभ्रंश-काल से होता है। अपभ्रंश-काल में साहित्य पर लोक-काव्य का प्रभाव पड़ने लग गया था और लोक-काव्य गीतात्मक और तुकांत होता है। इसलिए अपभ्रंश-साहित्य में तुक के प्रति इतना प्रबल आग्रह दीखता है। वस्तुतः तुक का विकास लोक-भाषाओं की गेय-परंपरा से हुआ और संस्कृत-साहित्य में जयदेव आदि के गीतों में ही वह अपवाद रूप में पाया जाता है।'[1]

अपभ्रंश-काव्य में लोक गीतों के आधार पर नवीन छंदों का आरंभ हुआ। ये छंद संस्कृत-प्राकृत छंदों की भांति वर्णित न होकर मात्रिक थे। साथ ही ये संस्कृत

१—हिन्दी साहित्य कोश पृ० १२५

अतिचार (सं १३६६)

तत्त्व विचार प्रकरण (लगभग १४ वीं शताब्दी)

वनपाल कथा (लगभग १४ वीं शताब्दी)

अभिव्यक्ति प्रणाली, शब्द संगठन वाक्य विन्यास एवं भाषा-स्वरूप की दृष्टि से राजस्थानी का यह प्रारम्भिक गद्य हिन्दी भाषा के विकास को समझने में पर्याप्त सहायता देता है।

(ख) विकास काल—यह राजस्थानी गद्य का प्रगति काल है। इस काल में गद्य एक निश्चित स्वरूप ग्रहण कर लेता है। प्रयास काल के प्रयोग अब समाप्त होचुके। शैली में सुघड़पन आया और भाषा संयत एवं स्पष्ट होकर प्रवाहमयी बनने लगी। इससे पूर्व गद्य स्फुट और टिप्पणियों या बालावबोधों के रूप में ही लिखा गया था, अब उसमें ग्रंथ रचना भी होने लगी। इस काल में भी जैनों ने ही प्रचुर गद्य कृतियों का निर्माण किया पर जैनेतर लेखकों का योगदान भी कम नहीं रहा। धार्मिक, ऐतिहासिक कलात्मक और वैज्ञानिक सभी प्रकार की गद्य रचनाएं इस काल में रची गईं।

विकास-काल की प्रथम प्रौढ़ गद्य-रचना आ० तरुण-प्रभसूरि कृत 'बालावबोध' (सं० १४११) है। कलात्मक गद्य की प्रथम रचना माणिक्यचन्द्र सूरिकृत पृथ्वीचन्द्र चरित-प्रबंध नाम 'वाग्विलास' (सं० १४७०) भी इसी काल की रचना है। चारणी कलात्मक-गद्य की प्रथम रचना शिवदास कृत 'अचलदास खीची री वचनिका' (सं० १४६०) भी इसी काल में मिलती है। जिन समुद्रसूरि और शांतिसागर सूरि की [illegible] जैन वचनिकाएं जिनका उल्लेख आगे किया जायगा भी इसी काल में रची गईं। श्री जिनवर्धन सूरि कृत कुवलयमाला (सं० १४५९) इस काल की तपागच्छ जैनाचार्यों से सम्बन्धित एक ऐतिहासिक रचना है। इसकी भाषा अंत्यानुप्रासयुक्त, प्रवाहमय एवं रंजनकारी है। कुल-मण्डन-कृत मुग्धावबोध औक्तिक (सं १४६०) इस काल का प्रमुख व्याकरण ग्रंथ है। वस्तिसार (सं० १४४६) एवं गणपति विद्यातिलक बालावबोध (सं० १४७२) इस समय में वैज्ञानिक गद्य का सुन्दर स्वरूप प्रस्तुत करते हैं।

विकास-काल के अन्य प्रमुख गद्य लेखकों में सोम सुन्दर सूरि (सं० १४३०-१४६६) मेरुसुन्दर खरतरगच्छ (१६वीं शताब्दी का प्रारम्भ) और पार्श्वचन्द्र सूरि (सं० १५३७-१६१२) के नाम उल्लेखनीय हैं। इन तीनों जैनाचार्यों ने पृथक-पृथक कई एक बालावबोधों की रचना कर राजस्थानी गद्य को एक निश्चित गति और विकास प्रदान किया।

२. मध्य-काल—विकसित-काल

विकसित-काल राजस्थानी गद्य के चरम उत्कर्ष का काल है। इस काल में भाषा प्रौढ़ और परिमार्जित हुई शैली में निखार आया और वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों की

अभिव्यंजना का सामर्थ्य भी ग्रहण करने लगी। वचनिका और ख्यात पद्य शैलियों का विकास यहीं आकर हुआ। मौलिक टीका और अनुवाद तीनों रूपों में गद्य के साथ पद्य रचनाएं होने लगीं जिससे राजस्थान भारती का भण्डार इतना समृद्ध हो गया कि वह भारतीय लोक-भाषाओं के पद्य साहित्य के मध्य अपना पृथक और स्वतंत्र स्थान पाने का अधिकारी बन सके। अभिलेखीय या पद्यात्मक गद्य भी इस काल में प्रचुर मात्रा में लिखा गया।

इस काल की सबसे महत्वपूर्ण रचना जयसिंहिया कृत वचनिका' राठौड रतनसिंहजी री महेसोतरी (सं० १७१५) है। इसमें प्रयुक्त गद्य राजस्थानी-गद्य का सर्वोत्कृष्ट नमूना है। इस काल की अन्यान्य महत्वपूर्ण गद्य रचनाओं में 'कुतुबुद्दीन सहजादे की बात' (१७वीं शताब्दी), राज रूपक' (सं० १७८८) १८वीं शताब्दी में रचित 'सभा-शृंगार' कुतुबुद्दीन' जीवीनंपेव नींबायत रो दो पहरो राजान राउत रो बात बणाव आदि प्रमुख हैं। १७वीं शताब्दी के अंत या १८वीं शताब्दी के प्रारम्भ में हमें 'ख्यात' संज्ञा से राजस्थानी गद्य-शैली के एक विशेष प्रकार के दर्शन होने लगते हैं। इस पर हम आगे अपना स्थान विचार करेंगे। कवि बख्तावर कृत नेहर-प्रकाश' (सं० १६३६) और शिखर वंशोत्पत्ति' (२०वीं शताब्दी) भी विकसित काल की उल्लेखनीय रचनाएं हैं।

३ आधुनिक-काल

आधुनिक काल में भी राजस्थानी की गद्य धारा अवरुद्ध नहीं हुई है। विकास काल के अंतिम चरण में गद्य-लेखन अवश्य शिथिल होगया था अब फिर से राजस्थानी गद्य नया मोड़ लेता हुआ दीख रहा है। नाटक, उपन्यास कहानी, रेखा-चित्र आदि सभी साहित्यिक विधाओं का विकास होरहा है। हां, निबन्ध के क्षेत्र में वह अभी आगे नहीं बढ़ पाया है।

२ तुकान्त गद्य

(क) तुकान्त-पद्य

संस्कृत का पद्य-साहित्य अतुकान्त है। तुकान्त पद्य का आरंभ अपभ्रंश-काल से होता है। अपभ्रंश-काल में साहित्य पर लोक-काव्य का प्रभाव पड़ने लग गया था और लोक-काव्य गीतात्मक और सतुकांत होता है। इसलिए अपभ्रंश-साहित्य में तुक के प्रति इतना प्रबल आग्रह दीखता है। वस्तुतः तुक का विकास लोक-भाषाओं की गेय-परंपरा से हुआ और संस्कृत-साहित्य में जयदेव आदि के गीतों में ही वह अपवाद रूप में पाया जाता है।[1]

अपभ्रंश-काव्य में लोक गीतों के आधार पर नवीन छंदों का आगम हुआ। ये छंद संस्कृत-प्राकृत छंदों की भांति वर्णित न होकर मात्रिक थे। साथ ही ये संस्कृत

१—हिन्दी साहित्य कोश पृ० ३२५

प्राकृत के आदर्श गाथा आदि मात्रिक छंदों से भी भिन्न प्रकार के और तुकांत भी आगे चल कर तुक-निर्वाह का प्रचलन इतना बढ़ गया कि अपभ्रंश के रचयिताओं ने संस्कृत के वर्णिक छंदों में भी तुक का प्रयोग किया।

जिस प्रकार गाहा प्राकृत का प्रिय छंद रहा है उसी प्रकार 'दूहा' अपभ्रंश का प्रसिद्ध एवं व्यापक छंद है। यह छंद (दूहा) नवीं-दसवीं शताब्दी में बहुत लोकप्रिय होगया था। इस छंद में नई बात यह है कि इसमें तुक मिलाये जाते हैं। संस्कृत प्राकृत में तुक मिलाने की प्रथा नहीं थी। दोहा वह पहला छंद है जिसमें तुक मिलाने का प्रयत्न हुआ और आगे चल कर एक भी ऐसी अपभ्रंश-कविता नहीं मिली गई जिसमें तुक मिलाने की प्रथा न हो। इस प्रकार अपभ्रंश-कविता एक नवीन छंद लेकर ही नहीं आई बिलकुल नवीन कारीगरी लेकर भी आविर्भूत हुई।[1]

(ख) तुकान्त-गद्य

दूहे के इस व्यापक प्रचार और तुक मिलाने की कारीगरी ने अपभ्रंश गद्य में भी प्रवेश किया और धीरे-धीरे अलंकृत अथवा काव्यात्मक पद्य में तुक का प्रयोग अलंकरण के रूप में होने लगा। यथा—

'सोइ खतीस अवक परिवार रज्ज छोव पहिरिय बणुरंग परिजन विमुक्कय वनमि पावे पन्नविय जम्मभूमि को मोह छोडिय धनि छोडिय।[2]

(ग) राजस्थानी तुकान्त-गद्य

राजस्थानी साहित्य में हमें दो प्रकार का गद्य मिलता है—साधारण बोलचाल का सीधा-सादा गद्य और अंत्यानुप्रासयुक्त कलात्मक-गद्य। राजस्थानी गद्य परंपरा में अंत्यानुप्रास युक्त अथवा तुकान्त-गद्य के रूप वचनिका वार्ता (वारता) बुतवात आदि नामों से मिलते हैं। वचनिका को छोड़ कर वचनिका बुत वात आदि के प्रयोग पृथ्वीराज रासो में भी हुए हैं।

वचनिका और दवावैत

राजस्थानी के प्रसिद्ध रीति-ग्रंथ 'रघुनाथ रूपक' में गद्य के दो प्रकार—१ वचनिका और २ दवावैत-बताये गये हैं। इन दोनों के भी पृथक-पृथक दो-दो भेद किये गये हैं। यथा—

१ वचनिका के भेद

दोय भेद वचनिका रा एक पद बंध दूजी गद्य बंध पद बंध दोय भेद एक तो वारता दूजी वारता में मोहरा राजणां। दोय भेद गद्य बंध

१—आ० हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य का आदिकाल पृ० ६७

२—संपा० डा० बाबूराम सक्सेना – कीर्तिलता पृ० २२

वचनिका है एह तो आठ मात्रा रो पद हुवै, दूजी पद बंध में बीस मात्रा रो पद बंध हुवै।[1]

(क) वरबंध (गद्यबंध) जिसमें मात्राओं का नियम न हो।

और (ख) पदबंध (पद्यबंध) जिसमें मात्राओं का नियम हो।

इन दोनों वचनिका भेदों के भी दो पृथक-पृथक दो प्रकार हैं। यथा

१ चतुष्कांत या तात्कालिक गद्य अपर नाम वारता।

२ चतुष्कांत पद्य (मात्रा का नियम नहीं)। यथा—

तिण समा में श्री मुखवाणी, जिसपणजी तारीफ आणी।
माठो सारा ही बाल पाई इण बल रावणसू जीतां ने सीता आई।

(ख) पद बंध वचनिका

१ जिसमें आठ-आठ मात्राओं के चतुष्कांत शब्द-समूह या पद्य-बन्ध हों। यथा—

नमी विशाल, रघुवर विसाल, वर्ण जहर सुख भरण सूर,
हनुमंत एह इण हुए अछेह सेवा सुसैव, किनी कमैत।
वे कहू नैण सुण विगत सैण पंचवटी प्रीत रहतां सु पैत,
उण हांम आम मनवाण पाम आसुर आमीत, तिण हरी सीत।

२ जिसमें बीस-बीस मात्राओं के चतुष्कांत शब्द या पद्य-बन्ध हों। यथा—

बोले सीतापंत इसकी जी वांणी सुरनर नागां नै वर्ण सुहाणी।
सेसाजस हनुमंत जिम ही सरसाई बीरां मंडरापी कीधी बडाई॥[1]

२. दवावैत के भेद:

'वर्ण मंत्र कवि ऋ तिके दवावैत दिम दोय।
एक सुवर्बंध होत है, एक वचबन्ध होय॥"

उपर्युक्त लक्षण देने के बाद रघुनाथ रूपक सार ने आगे कहा है—
"होय सो दवावैत। तिण में वरबंध दवावैत में मात्रा रो नेम नहीं
ने पदबंध में २४ मात्रा रो पद में प्रमाण हुवै।'
इस विवेचन के अनुसार दवावैत के दो भेद निर्धारित होते हैं—

१—टिप्पणी—मुद्रित 'रघुनाथ रूपक' में गद्य बंध के स्थान पर पद्यबंध और पद्यबंध के स्थान पर गद्यबंध है। यह उलट फेर हस्तलिखित प्रतियों में लेखक प्रमाद से हो गया जान पड़ता है। श्री अगरचंद नाहटा ने भी राजस्थान पुरातत्वान्वेषण मंदिर द्वारा प्रकाशित 'राजस्थानी साहित्य संग्रह' भाग १ में 'राजस्थानी गद्य काव्य परम्परा' शीर्षक लेख में इसी बात को माना है।

१ मद्वंध (गद्यबंध)—जिसमें सतुकांत गद्य खण्ड होते हैं, मात्राओं का नियम नहीं होता। यथा—

'प्रथम ही अयोध्या नगर जिसका बखाण
बारे जोजन तो चौड़ें सोलै जोजन के फिराव
चोतरफ के फैलाव चौसठ जोजन के फिराव
तिसके तले सरिता सुरिज के घाट
मऽ उठावस सु बहै चोसर कोसों के पाट।'

२ पदबंध (पद्यबंध)—जिसमें २४–२४ मात्राओं के खण्ड-समूह का बद्ध-छन्द होते हैं। यथा—

हाथियों के हलके बोंडू बणाते घोसे अरापत के लाखी जहवाति के छोसे। मत हेडु के दिन्नज दिन्न्यावल के सुजाव रंग रंग चिने सु दा बंड के बखाव। फूल की बनंस बीर बू ठ के छणके बादलों की जवमपामेरे मेरे मोरों की झनी झंणके। कल कदमु के लंपर मारी कनक की हुंस बनाहर के लैहर दीपमाला की रुस।

वचनिका और दवावैत में अन्तर

रघुनाथ रूपक कार द्वारा दिये गये पदबंध दवावैत के उपर्युक्त उदाहरण के प्रत्येक पद-छन्द में नियमानुसार २४–२४ मात्राओं के लक्षण का निर्वाह नहीं हुआ है उनमें मात्राएं कम ज्यादा हैं। इसी प्रकार वचनिका के दूसरे भेद और दवावैत के पहले भेद मद्वंध में भी कोई अंतर परिलक्षित नहीं होता। ऐसी स्थिति में वचनिका और दवावैत के अंतर को बताना बड़ा कठिन है। इसलिए श्री अगरचन्द नाहटा ने लिखा है कि दवावैत और वचनिका में क्या अंतर है ? यह अभी तक समझ में नहीं आया है।[1] 'रघुनाथ रूपक' के टीकाकार श्री मेहताबचन्द खारेड के मतानुसार वचनिकाएं दवावैत के ही भेद मालूम होती हैं। इतना-सा भेद मालूम होता है कि वचनिका कुछ लम्बी और विस्तृत होती है और मद्वंध में तो कई छंदों के छोटे अर्थात् लुप्त वचनिका रूप में छुपते चले आते हैं।

श्री खारेड की यह धारणा उचित नहीं है कि वचनिकाएं दवावैत के ही भेद हैं। क्योंकि वचनिका रचने की परंपरा दवावैत रचना परंपरा से काफी प्राचीन है। सबसे प्राचीन उपलब्ध वचनिका शिवदासकृत अचलदास खीची री वचनिका है जिसकी रचना सं० १४९० के आसपास हुई थी जबकि उपलब्ध दवावैतों में सबसे प्राचीन नरसिंहदास पोद की दवावैत' है जिसका रचना-काल नाहटाजी ने १७वीं शताब्दी का

१—श्री अगरचन्द नाहटा—राजस्थानी गद्य-काव्य की परम्परा शीर्षक लेख।

अंत या १७वीं शताब्दी का प्रारम्भ बताया है।[1] ऐसी स्थिति में यह नहीं कहा जा सकता कि वचनिका दवावैत का ही एक प्रकार या भेद है। वचनिका और दवावैत में मुख्य भेद भाषा संबन्धी है। उपलब्ध दवावैतों के स्वरूप-निरीक्षण से ज्ञात होता है कि उन पर निश्चित रूप से उर्दू-फारसी गद्य-शैली का प्रभाव है। श्री नाहटाजी का भी यह मत है कि इसकी (दवावैत की) परंपरा सरसी फारसी से संबंधित है।[2] यद्यपि वचनिकाओं में-विशेष कर बाद की रचनाओं में भी उर्दू-फारसी के शब्द प्रयुक्त हुए हैं। पर वे उर्दू-फारसी गद्य शैली के प्रभाव से मुक्त हैं। प्रो० नरोत्तमदास स्वामी भी वचनिका और दवावैत में भाषा-संबंधी अंतर को ही मुख्य मानते हैं, उनके मतानुसार 'वचनिकाओं की भाषा राजस्थानी है और दवावैतों की भाषा खड़ी बोली हिन्दी या उर्दू मिश्रित हिन्दी है।'

वचनिका की व्युत्पत्ति और अर्थ :

'वचनिका' शब्द (जिसे राजस्थानी में 'वचनका' भी कहा गया है) संस्कृत के 'वचन' शब्द से बना है, राजस्थानी में इसका मूल अर्थ है गद्य-रचना, रघुनाथ रूपकार ने इसी अर्थ में इसका प्रयोग किया है। आगे चल कर 'वचनिका' का प्रयोग तुकांत गद्य के अर्थ में होने लगा और सादे गद्य के लिए 'वारता' 'बात', 'वार्तिक' आदि शब्द काम में लाये जाने लगे परन्तु पुराना अर्थ भी साथ-साथ चलता रहा। यथा—

वचनिका

महाराजा रे विवाह रे आवण मंगल चवल कन्याइयो कीजे। पिण जो महाभारथ रो वाचणा वेक वार सूरां पूरां अवसाणहिज विगियां रा बड़ा राव माहे बड़ा हुवा पवाड़ो ज्यां सूरां पूरां चावरां रा केस चरणाई रे ऊना हुवे।

—वचनिका रा० रतनसिंघजी री महेसदासोतरी

अनेक लेखकों ने वचनका और वारता का एक ही अर्थ में प्रयोग किया है। कहीं-कहीं तुकांत गद्य के लिए भी 'बात' 'वार्तिक' वारता आदि का प्रयोग हुआ है। यथा—

वारता

धीरंधरा पावता बाहुर अवतार तपस्या के तेवपु अ एक से विस्तार।
माप का विहाई सा प्रताप का निधान भारतंड आपे जिसी बोतसी जिहाव।

१—श्री अगरचन्द नाहटा-दवावैत संज्ञक रचनाओं की परंपरा शीर्षक लेख : शोध पत्रिका वर्ष १२ अंक २ सितम्बर १९६०।

२—वही।

जापक पैंगंबर आप का बरियाव, ताप का सैस ज्वाल बाप का कुरतब।
सकसे का बैतवार अकसे का बाई अरिहस समुद्र आए कु मत्र के भाई।
रहणी में जोगेस्वर बहणी में जपसीस बहणी में सिवनेम सहणी में अहीस।
आगे जप तप आगे ईस्वर अबीन ताकू छल बांहू बल कुल करे हीन।"

—रतन चीर भांणकृत 'राज रूपक'

जैन लेखकों ने वचनिका का प्रयोग साधारण गद्य में लिखित टीका अनुवाद अथवा व्याख्या के अर्थ में किया है। जैन विद्वानों द्वारा टीका-व्याख्यादि में लिखित वचनिका साहित्य प्रचुर परिमाण में उपलब्ध है। अब तक ज्ञात ऐसी सब वचनिकाओं के नामों की सूची 'परिशिष्ट' में दी गई है।

'दवावैत' शब्द की व्युत्पत्ति और अर्थ

'दवावैत' शब्द की व्युत्पत्ति और अर्थ-दोनों ही-संदिग्ध हैं। दवावैत संज्ञक रचनाओं को प्रकाश में लाने वाले श्री नाहटाजी भी अभी तक 'दवावैत' शब्द के बारे में अपना कोई मत निर्धारित नहीं कर सके हैं। उन्होंने इस विषय में लिखा है कि दवावैत शब्द का अर्थ अभी तक मुझे उर्दू आदि के कोष ग्रंथों में प्राप्त नहीं हुआ।[1] फिर भी उन्होंने 'दवावैत' को १७वीं शताब्दी में हिन्दी में विकसित फारसी का एक रचना प्रकार माना है। पर अपने इस मत का कोई आधार स्पष्ट नहीं किया है।[1]

पहले कहा जा चुका है कि अभी तक उपलब्ध सभी 'दवावैत' संज्ञक रचनाओं पर फारसी रचना-शैली का प्रभाव स्पष्ट है—उनमें उर्दू-फारसी के शब्द प्रचुर परिमाण में प्रयुक्त हुए ही हैं साथ ही उनका प्रयोग भी फारसी-उर्दू की एक विशेष रचना-शैली 'बैत' के ढर्रे पर हुआ है। ऐसी स्थिति में 'दवावैत' का संबंध बैत से मानना अनुचित नहीं होगा।

'बैत' अरबी (तुकिलंग) शब्द है, जिसका अर्थ है एक शेर या दो मिसरे (चरण)।[2] 'दवावैत' में भी दो-दो समान तुक वाले गद्य-खण्ड होते हैं।

'दवावैत' संज्ञक जो रचनाएं हमें उपलब्ध हैं उनमें से कोई भी १७वीं शताब्दी के पहले की रचना नहीं है। १७वीं शताब्दी का समय हमारे साहित्य का 'समन्वय-काल' है। इस समय तक फारसी-साहित्य का प्रभाव उर्दू के माध्यम से देशीय भाषाओं तक पहुंच गया था इसमें संदेह नहीं। इसलिए राजस्थानी रचयिताओं ने जिनका शाही दरबार से किसी न किसी प्रकार का निकट सम्बन्ध था, भी फारसी रचना-शैली 'बैत'

१—श्री अगरचन्द नाहटा—दवावैत-संज्ञक रचनाओं की परम्परा शोधक मत-शोध-पत्रिका वर्ष १२ अंक २ सितम्बर १९६०।

२—मुहम्मद मुस्तफा—उर्दू-हिन्दी शब्द कोश पृ० ४२६।

से प्रभावित होकर रचनाएं की हों तो कोई आश्चर्य नहीं। राजस्थानी में उर्दू-फारसी के कई शब्द जैसे-मजबूत, हाल, अहवाल, हकीकत (हकीकत) आदि रचना प्रकार के रूप में ग्रहण किये गये हैं और फिर 'बैतबाजी' [1]– (जो हमारे यहां की 'अंत्याक्षरी' के समान ही एक साहित्यिक व्यसन है) का तो मध्य काल में व्यापक प्रचार रहा, आज तक उर्दू फारसी जानने वाले समाज में वह लोक प्रिय बनी हुई है। ऐसी स्थिति में राजस्थानी रचनाओं में यदि साहित्यिक-समन्वय की प्रेरणा अथवा व्यापक लोक प्रियता के आधार पर अपनी भाषा में भी 'बैत' में रचनाएं की हों तो वह असंभव नहीं।

'दवाबैत' शब्द संभवतः अरबी के दो शब्दों 'दावा' और 'बैत' के मेल से बना है—दावा बैत 'दवाबैत' (राजस्थानी भाषा में लोप और ध्वनि परिवर्तन साधारण सी बात है)।

'बैत' शब्द का स्पष्टीकरण हो चुका है। 'दावा (दवा) शब्द 'बैत' के साथ जुड़ कर से जोड़ा गया प्रतीत होता है। मूल रचना-शैली 'बैत'। इस धारणा का आधार यह है कि हेमरतन सूरि ने सं० १६४५ में रचित अपने राजस्थानी भाषा के गोरा बादल पद्मिनी चौपाई ग्रंथ में अनेक बहुति (बैत) शब्द का प्रयोग-छंद के रूप में किया है। यथा—

छंद बहुति

(क) हजार बरस बाहिल। मेर सजिम दुरबार।
बिकुंठ नुगुर जु नम। जिस के बरबर हजार ॥६०४॥
छन धर बावसा नम। रव इंद्र तार तार।
दीवर सरोज नेस्ती। बहुल बार बार ॥६०५॥

(ख) बस बूहा मे जोई बैत माहे लिखियो से संकेत ॥६१८॥

हेमरतन सूरिकृत गोरा बादल पद्मिनी चौपाई (सं० १६४५)

कवि बखतावर ने भी अपने 'वेदूर प्रकाश' (रचना काल सं० १९३६) में 'बैत' शब्द का प्रयोग किया है। यथा—

बैत

(ग) असीमद बखतम जानी बुहाट जु कहाय।
हनुमन्ती गढ़ मध्य नगूर जानी भाय॥

—वेदूर प्रकाश पृष्ठ १४

१— बैतबाजी बच्चों का एक हल्की रमण जिसमें एक लड़का शेर पढ़ता है और दूसरा लड़का उस शेर के अंतिम अक्षर से प्रारंभ होने वाला दूसरा शेर पढ़ता है या उसी विषय पर दूसरी उक्ति पढ़ता है।' —वही पृ० ४२६

इसी प्रकार गरीबदास ने भी 'अपनी' गरीबदास की बानी में बैत में रचना की है।[1]

'दावा' अरबी शब्द है। अन्यान्य अर्थों के साथ इसका एक अर्थ 'बाद' भी है।[2] इससे हम 'दवावैत' (दावावैत) का अर्थ बैत में लिखित रचना से लगते हैं। इससे अधिक यहां 'दावा' (जो राजस्थानी में 'दावा' बना है) शब्द का कोई महत्व प्रतीत नहीं होता।

एक अन्य प्रकार से भी 'दवावैत' शब्द की व्युत्पत्ति की ओर संकेत किया जा सकता है। दवावैत' को एक मिश्रित शब्द दूवा+बैत=दूवावैत>दवावैत=मान कर यह अनुमान किया जा सकता है कि राजस्थानी के लोकप्रिय छंद दूवा (दोहा) के ढंग पर रचित फारसी के बहु प्रचलित रचना प्रकार बैत' को राजस्थानी रचयिताओं ने 'दवावैत' संज्ञा देदी हो तो कोई आश्चर्य नहीं। यहां भी दवा (दूवा) शब्द ऊपर से ही जोड़ा गया लगता है।

फारसी में 'तुकबन्द' अर्थात् तुकयुक्त गद्य शैली का व्यापक प्रचार रहा है पर इससे यह नहीं कहा जा सकता कि राजस्थानी की वचनिका और दवावैत शैलियां एकदम फारसी से उद्भूत हैं। दवावैत' शैली पर तो फारसी प्रभाव स्पष्ट है, यद्यपि इस पर भी राजस्थानी का अपना रंग कम नहीं है परन्तु वचनिका शैली तो एकदम भारतीय है। प्राकृत की कथा आख्यायिकाओं की गद्य शैली में उसके बीज खोजे जा सकते हैं।

(घ) तुकान्त गद्य की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय

राजस्थानी साहित्य जितना विशाल है उतना ही विषय शैली और रचना वैविध्य से पूर्ण भी। राजस्थानी के साहित्यकारों ने तुकांत गद्य में प्रचुर रचना की है, यह गद्य अधिकतर पद्य के साथ-साथ प्रयुक्त हुआ है। पद्य के साथ बीच बीच में गद्य में रचना करने की प्रणाली राजस्थानी में काफी पुरानी है। आगे चल कर तुकान्त गद्य और पद्य मिश्रित रचनाओं को वचनिका' नाम से अभिहित किया गया है। अस्तु।

पृथ्वीचन्द्र चरित्' अपर नाम 'वाग्विलास (सं० १४७८) राजस्थानी तुकान्त गद्य की सर्व प्रथम रचना है। इसके लेखक माणिक्यचन्द्र सूरि हैं। इसमें महाराज के पहलखपुर पाटण के राजा पृथ्वीचन्द्र द्वारा अयोध्या के राजा सोमदेव की कन्या रत्नमंजरी को प्राप्त करने की कथा है। यह वर्णनात्मक है। इसकी भाषा तुकांत गद्य का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करती है। यथा—

१—डा० रामकुमार वर्मा : हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास पृ० २८७
२—मुहम्मद मुस्तफा : उर्दू हिन्दी शब्द कोष।

' जिहां देसी ग्राम अरयंत अभिराम । जहां नगरजिहां न वानीवइ कर । दुर्ग, जिसां हुई स्वर्ग । भाग्य न बीपजइ सामान्य । अगर सोना रुपा तणा डावर । मेह देम माहि नदी वहई लोक सुखइं निर्वहइ । हस्तिउ देम पुंड्र तणउ निवेश अवमऊ प्रदेस । तिणि देसि पहठाणपुर पाटण वर्तई, जिहां न अन्याय न वर्तई । जीणइ नगरि कडसी मे करी सहाकार पापमि पोडउ प्रकार उत्तर प्रतोली द्वार । वातास मणी वाई महाकाम पाई, समुद्र जेहनु माई । जे सिद्ध कैलास पर्वत सिंह आड, इरषा अर्बुद देवतणा प्रासाद । करइ उल्लास, महेसरी कोटीध्वज तणा आवास । आमलइं मन मनइं राज भवन । उपारी अर्पंड सुवर्णमय दंड ध्वजपट सहसहइं प्रचंड । [1]

गुर्वावली (सं० १४८२) राजस्थानी तुकांत का पद्यानुकारी गद्य की दूसरी महत्वपूर्ण रचना है। इसके रचयिता श्री जिनवर्धन हैं। यह जैन शासन संघ के तपगच्छ आचार्यों से संबद्ध एक ऐतिहासिक रचना है। इसकी भाषा प्रवाहमयी एवं रोचक है।

यथा—

"जिम देव माहि इन्द्र जिम ज्योतिषि माहि चन्द्र
जिम फूल माहि कल्पद्रुम, जिम रत्न वस्तु माहि विद्रुम
जिम नरेन्द्र माहे राम जिम रूपवंत माहे काम
जिम स्त्री माहे रम्भा जिम वादित्र माहे भंभा
जिम सती माहि सीता जिम स्त्री माहि गीता
जिम साहसिक माहि विक्रमादित्य, जिम ब्राह्मण माहि आदित्य
जिम रत्न माहि चिंतामणि जिम आभरण माहि चूडामणि
जिम पर्वत माहि मेरुप्रभा, जिम गजेन्द्र माहि ऐरावण विभु
जिम रस माहि घृत जिम मधुर वस्तु माहि अमृत
तिम सांप्रति काल सकल गच्छनायक
ज्ञानि विज्ञानि तपि जपि क्षमि दमि संयमि करी अवुज्झ
ए श्री तपोगच्छ आचार्य जयवंतउ वर्तइ ।" [2]

इसके अतिरिक्त राजस्थानी की और भी कई रचनाओं में तुकांत गद्य के सुन्दर उदाहरण मिलते हैं जिनके कारण केवल नाम ही नीचे दिये जा रहे हैं—

	रचना	रचयिता	रचनाकाल सं० विक्रमी
१	वस्तुपाल तेजपाल रास	हीरानन्द सूरि	१४८२
२	मुक्तकानुप्रास	अज्ञात	१६वीं शताब्दी

१—श्री अगरचन्द नाहटा के राजस्थानी गद्य काव्य की परम्परा शीर्षक लेख से उद्धृत।
२—वही

४ कुतबुद्दीन शाहिजादे री बात	अज्ञात	१७वीं शताब्दी
५ मीजन विचिकुनि	गंगसुन्दर	?
६ मंमा शु पार	अज्ञात	१८वीं शताब्दी
७ जीवी नेमेव री बावत री वी पहरो	अज्ञात	—
८ राजानं राजर्षि री बातें बंधाव	अज्ञात	?
९ सिंगर वंशोत्पत्ति उपनाम ' पीढ़ी वार्तिक	कविया गोपाल	२ री शताब्दी
१० केहर-प्रकाश	कवि बख्तावर	१९१६

दुवावैत-रचनाएँ

'रघुनाथ रूपक' में दिये गये 'दवावैत' के लक्षणों की टीका करते हुए श्री महताबचन्द्र खारेड ने लिखा है कि 'दवावैत' कोई छंद नहीं है जिसमें मात्राओं वर्णों अथवा गणों का विचार हो। यह अंत्यानुप्रास रूप गद्य-काव्य है। अंत्यानुप्रास अन्त्यानुप्रास और किसी प्रकार का मानुप्रास या यमक लिया हुआ गद्य का प्रकार है।[1]

दवावैत' संज्ञक रचनाएं अधिक उपलब्ध नहीं हुई हैं। सभी उपलब्ध दवावैत रचनाएं १८वीं शती के बाद की हैं। इनकी भाषा और शैली-स्वरूप पर विचार करने से प्रकट होता है कि इनमें उर्दू फारसी के देशज भाषा में गढ़े हुए शब्दों का बाहुल्य है—बड़ी बोल की भाषावस्था के स्वरूप के भी दर्शन इनमें हो जाते हैं। यथा—

> अहो आजो रे यार बैठो दरबार।
> ए चांदनी रात कहो मजलस की बात॥
> कहा कीण कीण मुलक कीण कीण राजा देवे।
> कीण कीण पातिसाह कीण कीण बईवान देवे॥
>
> —जिनसुख सूरि दवावैत (सं १७७२)

अब तक प्राप्त दवावैत संज्ञक रचनाएं निम्नलिखित हैं—

रचना	रचयिता	रचनाकाल विक्रमी सं० में
१ नरसिंहदास गौड़ की दवावैत	मा० मालीदास	१८वीं शताब्दी
२ जिनसुखसूरि दवावैत उपनाम मजलस	गंग विजय	१७७२
३ दवावैत	कु अर कुशल	१८००
४ जिनलाभसूरि दवावैत	धर्मसार (वाचक विनय जयत)	१८१० और १८२० वैशाख
५—महाराजा अजीतसिंह की दवावैत	द्वारकादास बचवाड़िया	१७७२

१—रघुनाथ रूपक मीनां री—पृ २३६

६ महाराज सरदारसिंहजी का दवावैत	अज्ञात	अज्ञात
७ महाराज रतनसिंहजी की दवावैत	दयादयाल	१६वीं शताब्दी
८ दुरगदत्त की दवावैत	दुरगादत्त	
९. कुंवर संग्रामसिंह का दवावैत	अज्ञात	प्राप्त प्रति सं० १८६७

उपर्युक्त सभी दवावैतों का संक्षिप्त परिचय श्री अगरचन्द नाहटा ने अपने दवावैत संज्ञक रचनाओं की परम्परा शीर्षक लेख में दिया है।

वचनिका संज्ञक तुकांत गद्य की रचनाएं

वचनिका' राजस्थानी की एक अत्यानुप्रास अथवा तुकांत गद्य-शैली है। किन्तु परंपरा में उस काव्य रूप को 'वचनिका' संज्ञा दी गई है जिसमें तुकांत गद्य के साथ पद्य भी सम्मिलित होता है। ऐसी रचनाओं में पद्य की अपेक्षा गद्य बहुत ही कम रहता है। साहित्य दर्पणकार की मान्यता 'गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते'—के अनुसार वचनिकाओं को 'चम्पू' कहा जा सकता है।

राजस्थानी में जैनों ने भी वचनिकाओं की रचना की है और चारणों ने भी।

(क) जैन विचनिकाएं—

यद्यपि जैन रचयिताओं ने 'वचनिका' शब्द को साधारण गद्य के अर्थ में ग्रहण करके अपनी टीकाओं, व्याख्याओं और अनुवाद-ग्रंथों को भी 'वचनिका' संज्ञा दी थी परन्तु १६वीं शती के उत्तरार्द्ध जैनों द्वारा रचित दो ऐसी वचनिकाएं भी मिली हैं जिनमें तुकांत गद्य का प्रयोग किया गया है। इनके नाम ये हैं—(१) जिन समुद्र सूरि की वचनिका' और (२) शांतिसागर सूरि की वचनिका।[1] नीचे इनका संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है—

१ जिनसमुद्र सूरि की वचनिका

इसमें जैसलमेर के खरतरगच्छाचार्य श्री जिन समुद्र सूरि को अपनी राजधानी में ससम्मान आमंत्रित करने वाले राव सातलके यश और कीर्ति का वर्णन है। सं० १५४८ के वैशाख मास में आचार्य श्री जोधपुर पधारे थे। यह वचनिका भी पूर्व वचनिकाओं की ही भांति वर्णन-विशदता से पूर्ण है। उसकी विषय परिधि राव सातल द्वारा श्री जिन सूरि को आमंत्रित करने राव-सातल यश-वर्णन आचार्य का नगर प्रवेश उनका स्वागत और उत्सव वर्णन तक सीमित है।

१—ये दोनों वचनिकाएं राजस्थानी भाग २ पृ० ७७ पर प्रकाशित हो चुकी है।

२ शांतिसागर सूरि की वचनिका

यह खरतर गच्छ की आद्य पल्लीवाल शाखा के प्रमुख खरतरगच्छाचार्य श्री शांतिसागर सूरि से सम्बद्ध है। ये आचार्य विक्रम की १६वीं शती के मध्य में विद्यमान थे। इस वचनिका के वर्ण्य विषय का आकलन इस प्रकार किया जा सकता है—

१ खरतरगच्छाचार्य श्री शांतिसागर सूरि का वंश-वर्णन।
२ राव जोधा के पुत्र श्री सूर्यमल के वैभव का विवरण।
३ रिणवास के पुत्र कर्णराज द्वारा आचार्य को मेड़ता बुलाया जाना।
४ स्वागत-सत्कारोह तथा उत्सव।
५ जोधपुर में रिणराज ठाकुर द्वारा उनका प्रवेशोत्सव।
६ बापपुर में आचार्य का चातुर्मास।

उपर्युक्त दोनों जैन वचनिकाएं अन्त्यानुप्रासयुक्त पद्य में रची गई हैं। इनकी भाषा मरुगुर्जर है। दोनों रचनाओं के रचयिताओं के नाम ज्ञात नहीं हैं।

पद्य के उदाहरण—

१ मोटइ साहस की पद बडउ पवाडउ पसीवउ बंदी बोलाणी तउ इम्याख तणइ पाखणइ कीयउ। किम सातार रिण कुमार। बाबा प्रविचल कोट कटक मन सबल। बूहाडिया माल जयमाल बीरम चर्चा रिणमल कुल मंडण श्री जोधराजा मंडण। प्रतापी प्रचण्ड भाण अखण्ड राजाधिराज साहु सर्वकाज।

— जिन समुद्र सूरि की वचनिका

२ इसी परि श्री कर्णभूत आरति गाई हरषित बाई कही बुद्धि उचाई, कहुवा लापउ लाई आम्हें साहराज लाई खाजि अम्हां-सउं लगाई। अजरज उपहिं आपि रिणपरम संतापि अम्हु कहु भेटा करि आपि सकल आवक श्री आरति करापि।

— शान्तिसागर सूरि की वचनिका

(ख) चारणी वचनिकाएं—

अब तक चारणों द्वारा रचित दो ही वचनिकाएं उपलब्ध हुई हैं—

१ विक्रमदास चारण कृत अचलदास खीची री वचनिका (सं १४८०) और (२) खिड़िया जगा कृत वचनिका राठौड़ रतनसिंघजी री महेसदासोत री (सं १७१५)। उपर्युक्त दोनों चारणी वचनिकाएं हमारे निबन्ध का विषय हैं।

१

अचलदास खीची री वचनिका

चारण सिवदास री कही

अचलदास खीची री वचनिका

कृति और कृतिकार

अचलदास खीची री वचनिका चारणी साहित्य के कलात्मक गद्य की प्रथम रचना है। डा० तैसीतोरी ने इसे The great Classical model की संज्ञा दी है। यह एक ऐतिहासिक रचना है, जिसमें गागरौणगढ़ (कोटा राज्यान्तर्गत) के राजा अचल दास खीची का कीर्ति-स्तवन किया गया है।

अचलदास खीची विक्रम संवत् १४६७ के आसपास सिंहासनारूढ़ हुआ था। उसका विवाह मेवाड़ के महाराणा मोकल की पुत्री पुष्पा से हुआ था—वचनिका में यही नाम मिलता है जब कि कर्नल टाड ने उसका नाम सीलाबाई दिया है।[2]

अचलदास खीची री वारता नामक एक अन्य राजस्थानी रचना में भी मोकल की पुत्री का नाम सीला दिया गया है। कहा जाता है कि विवाह के समय अचलदास ने महाराणा मोकल से यह वचन लिया था कि शत्रुओं द्वारा उसके राज्य पर आक्रमण किये जाने पर महाराणा उसकी सहायता करेंगे।

जब मालवे (मांडू) के सुलतान होशंगशाह गौरी ने गागरोण पर चढ़ाई की तब अचलदास ने अपने पुत्र वीरम को महाराणा के पास सहायता प्राप्त करने के उद्देश्य से भेजा। वचनिका में भी कहा गया है, वीरम महाराणा मोकलसी पासि गयउ। महाराणा अचलदास की सहायतार्थ गागरौण के लिए प्रस्थान कर ही रहे थे कि चाचा एवं मेरा ने उसका वध कर डाला। मारवाड़ के राव रणमल भी अचलदास की सहायता के लिए आ रहे थे किन्तु मार्ग में ही महाराणा मोकल के वध का समाचार सुन कर सीधे मेवाड़ चले गये।[3]

इस प्रकार अपने हितैषियों की सहायता से वंचित होकर अचलदास ने अकेले ही होशंगशाह गौरी से युद्ध किया। परिणाम स्वरूप उसकी सेनियों ने बौहर जमाया और वह अपने साथियों सहित शत्रु संहार करता हुआ वीर गति को प्राप्त हुआ।

इसी प्रसंग को लेकर चारण शिवदास ने अचलदास खीची री वचनिका की रचना की है। वीर अचलदास के अनिमोचित आदर्श एवं बलिदान का प्रतिपादन करने वाली यह वीर-रसात्मक रचना आगे चल कर अत्यधिक लोकप्रिय हुई और इसकी कई

१—डा तैसितोरी—रा रतनसिंघजी महेसदासोतरी वचनिका-इन्ट्रोडक्शन पृ १
२—टाड : राजस्थान कुर्स संस्करण पृ ३३१ —
३—जगदीशसिंह गहलोत : मारवाड़ का इतिहास पृ ११५ —

एक प्रतियां तैयार हुई।[1] इनमें से दो प्रतियां बीकानेर के अनूप पुस्तकालय में सुरक्षित है। प्रो० नरोत्तमदासजी स्वामी इनमें से संवत् १६३१ की प्रति को प्रमाणित मान कर इसका सम्पादन कर रहे हैं। हमने भी अपने अध्ययन में उनी के उदाहरण दिये हैं।

शिवदास का जीवन-वृत्त:—

शिवदास के विषय में इतना ही ज्ञात है कि वह नागरोण के राजा अचलराम का आश्रित चारण कवि था। इसके अतिरिक्त इसके जीवन-वृत्त के बारे में कहीं कुछ नहीं मिलता। उसके विषय में यह किंवदन्ती अवश्य प्रचलित है कि युद्ध के समय जब गढ़ की रक्षा कर पाना असम्भव होगया तब अपने आश्रयदाता के साथ शिवदास भी शत्रु से लड़ कर वीर-गति प्राप्त करने के लिए प्रस्तुत हुआ, पर उसे युद्ध में सम्मिलित नहीं किया गया। उसे आज्ञा दी गई कि वह राजकुमारों (जिन्हें युद्ध से विरत कर दिया गया था) की सुरक्षा के लिए जीवित रहे एवं प्रस्तुत युद्ध के विषय में काव्य-रचना करके आश्रयदाता की कीर्ति को चिरस्थायी बनावें। अंततः शिवदास को आज्ञा का पालन करना पड़ा।[2] उसने सम्पूर्ण युद्ध को अपनी आंखों से देखा तथा अपने आश्रयदाता को अमर करने के लिए इस 'वचनिका' की रचना की।[3]

वचनिका का रचना काल:—

'वचनिका' में उसकी रचना तिथि का वर्ष के बारे में कोई संकेत नहीं दिया गया है। अतएव उसका रचना काल निश्चित रूप से निर्धारित नहीं किया जा सकता पर इतना निश्चित है कि इसकी रचना उपर्युक्त युद्ध की घटना के बाद ही कभी हुई है।

डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के अनुसार यह युद्ध वि० सं० १४६२ के आसपास हुआ था क्योंकि महाराणा मोकल का वध वि० सं० १४६० में हुआ।[4] डा० मोतीलाल मेनारिया ने इस युद्ध का समय वि० सं० १४८२ माना है।[5] परन्तु ये दोनों ही मत सर्वमान्य नहीं जान पड़ते।

१—डा० टैसीटोरी को इसकी कई प्रतियां अपने अनुसंधान के समय प्राप्त हुई थीं जिनका उल्लेख उन्हें ने जर्नल आव दी एशियाटिक सोसायटी आव बंगाल भाग १२ वर्ष १९१६ और भाग १६ सन् १९१० में किया है।

२—द्रष्टव्य डा० टैसीटोरी वचनिका रा० रतनसिंघजी री महेसदासोतरी-इन्ट्रोडक्शन पृ० ४

३—डा० टैसीटोरी—ए डिस्क्रिप्टिव केटलाग आव बार्डिक एण्ड हिस्टोरिकल मैनुस्क्रिप्ट बिलांगिंग टु दी बार्डिक चौहट्टी भाग १ बीकानेर स्टेट पेज ४१।

४—डा० गौ० ही० ओझा—उदयपुर राज्य का इतिहास पहली जिल्द पृ० २५८

५—डा० मोतीलाल मेनारिया—राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० १००

मुसलमानी फारसी तवारिखों में भी यद्यपि इस आक्रमण, युद्ध तथा गागरोण विजय की कोई निश्चित तारीख नहीं दी गई है परन्तु उनमें वर्णित घटनाक्रमों तथा स्थान स्थान पर दिये गये हिजरी सनों के आधार पर गागरोण युद्ध तथा अचलदास खीची की मृत्यु की तारीख और सन् संवत् निश्चित करना कठिन नहीं है। तबकात-इ अकबरी' और तवारीख इ-फरिश्ता' के अनुसार गागरोण पर होशंगशाह का आक्रमण हि सन् ६२६ (सं० १४८ वि०—१४२१ ई०) में हुआ था। गुजरात का सुलतान अहमद शाह २४ रबी-उस्-सानी ६२६ हि० (वैशाख कृष्णा १० १४८० वि० अप्रेल ६ १४२१ ई०) को गुजरात वापस लौट गया था। तत्पश्चात् आवश्यक तैयारी कर होशंगशाह ने गागरोण पर चढ़ाई की।[1] इन फारसी तवारिखों में गागरोण विजय सम्बन्धी कोई विस्तृत वर्णन नहीं लिखा गया है। गागरोण जीत लेने के बाद होशंगशाह ने ग्वालियर पर चढ़ाई की तब दिल्ली का सैयद सुलतान मुबारक शाह ग्वालियर की सहायता करने को रवाना होता हुआ मीलपुर पहुंचा। वहां अन्त में मुबारकशाह और होशंगशाह की भेंट हुई और दोनों के बीच आपसी समझौता होगया। इस चढ़ाई से लौट कर मुबारक शाह रजब ६२७ हि० (अधिक आषाढ़ १४८१ वि०—जून १४२२ ई०) में वापस दिल्ली पहुंचा था।[2]

अतः स्पष्टतया गागरोण पर चढ़ाई और विजय हिजरी सन् ६२६ (ई० सन् १४२१ तदनुसार सं० १४८० वि) के उत्तरार्द्ध में हुई होगी। फारसी तवारिखों में इस चढ़ाई और विजय का साल नहीं दिया गया है। अचलदास खीची री वचनिका के अनुसार यह युद्ध महाष्टमी (आश्विन शुक्ल) से लेकर दूसरी अष्टमी (कार्तिक कृ० ८) तक चला था—यथा "इसी परिस्यां लड़तां रामतां मरतां मारतां महा अष्टमी भारथ युध मातब बढ़ त्यां दूसरी अष्टमी आइ सें आप्ती हुवी।"

महाष्टमी सोमवार, सितम्बर १३ १४२१ ई० को थी। कार्तिक कृ० ८ सोमवार, सितम्बर २७ १४२१ ई० को पड़ी थी। अतः स्पष्ट है कि अचलदास खीची की पराजय और मृत्यु कार्तिक कृ० ८ १४८ वि० (सितम्बर २७ १४४२ ई०) को हुई थी।[3]

१—तबकात-इ-अकबरी (अंग्रेजी अनुवाद) ३ पृ० २०७-८ ४७३, हिस्ट्री ऑफ तारीख इ-फरिश्ता का अंग्रेजी अनुवाद ४, पृ० २३ २४,२८२ ३।

२—तबकात०, १ पृ० ३०५ ६,३ पृ ४७३ ४८०, हिस्ट्री १ पृ० ५१७-५१८, ४ पृ० १८३, याहया इब्न तारीख इ-मुबारकशाही (अंग्रेजी अनुवाद)पृ० २०६ २१०।

३—दीनानाथ शर्मा द्वारा संपादित अचलदास खीची री वचनिका—डा० दशरथ शर्मा का ऐतिहासिक परीक्षण पृ० ६

मुहता नैणसी की ख्यात में एतद्विषयक जो भी उल्लेख हैं वे ईसा की १७वीं शताब्दी के हैं इसलिए वे प्रामाणिक नहीं माने जा सकते। अतः उनके आधार पर महाराणा मोकल और अचलदास खीची के मृत्यु संवत् को एक मान कर विचार करना ठीक नहीं। आलोच्य वचनिका के उल्लेख से गागरोण लड़ाई के समय महाराणा मोकल विद्यमान थे। अतः मोकल के मृत्यु संवत् १४८५ (१४२८ ई०) के बाद होने में कोई कठिनाई उपस्थित नहीं होती।

इस प्रकार सिद्ध है कि इस वचनिका की रचना गागरोण युद्ध अर्थात् वि० सं० १४८० के बाद ही हुई है। इस कृति के रचना-काल के विषय में डा० मोतीलाल मेनारिया का मत निराधार सिद्ध होता है। एक ओर तो मेनारिया जी गागरोण युद्ध की घटना को वि० सं० १४८५ का मानते हैं[1] और दूसरे स्थल पर इस युद्ध की घटना को लेकर लिखी गई इस वचनिका का रचना काल वि० सं० १४७० निर्धारित करते हैं।[2]

आलोच्य ग्रंथ के अतिरिक्त अचलदास के जीवन की इसी युद्ध घटना को लेकर राजस्थानी में एक रचना और रची गई जो 'अचलदास खीची री वारता' के नाम से प्रसिद्ध है। इसकी एक प्रति राजकीय पुस्तकालय जयपुर[3] में और एक मुनि श्री कांतिसागरजी के संग्रह में सुरक्षित है। बीकानेर में भी इसकी कुछ प्रतियां उपलब्ध हैं।

'वात' के प्रारंभ में अचलदास की दो रानियों के प्रेम की कहानी है और 'वचनिका' में अचलदास और मांडू के सुल्तान के युद्ध का उल्लेख है जिसका वचनिका में वर्णित युद्ध का पूर्ण साम्य है। 'वात' में शृंगार और वीर-रस प्रधान हैं जबकि वचनिका में एक ही प्रधान रस है और वह है 'वीर'।

१—डा० मोतीलाल मेनारिया—राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० १००

२—डा० मोतीलाल मेनारिया—डिंगल में वीर रस पृ० ३८

३—मोतीलाल मेनारिया—राजस्थान में हस्तलिखित ग्रंथों की खोज भाग १ पृ० १—२

साहित्यिक-विवेचना

वचनिका की कथा

कवि ने कुल देवी—बीस हाथ—की वन्दना और वेणु पुस्तक धारिणी कांसमीर कंवरि वसन्ति वीतनाद पुण्य दिवण सरस्वती' का स्मरण करके अपने ग्रन्थ का समारम्भ किया है।

कवि को अपनी प्रतिभा और वर्ण्य-विषय पर गर्व है जिसे उसने दूध मांह साकर पड़ह सोनड़ घर सु बात एक अवल और कवइ शिवदास" कह कर व्यक्त किया है। तथापि वह यह मानता है कि वह तभी सफल समझा जावेगा जबकि भावी राजा अपनी सभा सहित अर्थात् काव्य-पारखियों सहित उसकी कृति को चित्त देकर सुनेंगे—आमिलत राजा सभा सहित सूचित हुई सुणइ सब सुकवि। इसके बाद कथा आरम्भ करती पड़ी है।

मांडू-पति हौसंगशाह गोरी का बल-प्रताप चोटी पर है। उसकी विकट वाहिनी के आगे चारों दिशाओं के शासक नत-शिर हो गये हैं। जब इस सर्वशक्तिमान गोरी-राजा ने अचलगढ़ चोटी पर चढ़ाई की तब उसके साथ अन्यान्य ६१ महोन्मत्त पदपति भी साथ हो लिये। गोरी राजा की सेना असंख्य थी उसमें १२ लाख चक्रवर्ती शासक और ६१ लाख मानव सैनिक थे। इनके अतिरिक्त मियां उसमान खान गजनी खान जमरखान इसमत खान सरीखे उद्भट यवन-वीर और सम्पूर्ण कला-सम्पन्न पराक्रमी हिन्दू नरेश नर्पतिक आदि भी अपने दल-बल सहित उसकी सेना में सम्मिलित थे।

गोरी राजा की यह सेना जब चलती थी तब तूर्य धूल से आच्छन्न हो जाता था और पृथ्वी थक-थक करती हुई कंपायमान हो उठती थी। प्रस्थान के समय सेना के अगले भाग को जहां पानी मिलता था उसके मध्य भाग को वहीं कीचड़ मिलता था और जब सेना का अन्तिम भाग वहां से गुजरता था तो वहां धूल उड़ने लगती थी। वस्तुतः वह दूसरा विक्रमादित्य था।

सिंह और हाथी एक ही वन्य-प्रदेश में वास करते हैं फिर उनमें ऐसा क्या अन्तर है कि हाथी तो लाख रुपये में बिकता है पर सिंह को कोई कौड़ी में भी नहीं लेता। क्यों? इसका कारण यही है कि हाथी अपने गले में बन्धन डलवा लेता है—पराधीनता स्वीकार कर लेता है। ऐसे लोग जहां भी जीवते हैं वह वही चला जाता है। यदि सिंह भी हाथी की भांति गल-बन्धन धारण करले तो वह भी दस लाख

में विवेचना और फिर भी सस्ता कहा जायगा। पर यह उसकी वीर प्रकृति और संस्कारों के विरुद्ध है।

प्रबलदास सिंह के समान है। उसने गोरी राजा के कड़वे वचन अर्थात् उसकी आधीनता स्वीकार कर लेने के प्रस्ताव मात्र से कुपित होकर दोनों हाथों में कृपाण लेकर उसके विरुद्ध युद्ध किया। वह नर-सिंह (प्रबलदास) शत्रु की पकड़ में नहीं आया पराधीन नहीं बनाया जा सका—उसने कायर (हाथी) की भांति परतन्त्रता (गल-बन्धन) स्वीकार नहीं की।

असीम बल-तेज और गौरव मण्डित पराक्रमी गोरी राजा देश प्रदेश के अनेक विकट वीरों के साथ प्रबलदास की ओर बढ़ा चला आ रहा था। ऐसा कौन हिन्दू नरेश है जो गोरी के प्रति मन में भी कुपित होने का साहस कर सके। किसका माथा ऊंचा है? किसने वेश बदल हुआ है? और किसकी मां ने दूध पिलाया है जो उसकी तलवार के सामने टिक सके। आज स्थिति बड़ी दयनीय है। अब देश में न तो सोम और सारंग जैसे वीर नरेश ही रहे हैं और न ही कान्हडदेव जैसे पराक्रमी राजा ही शेष बचे हैं—हठीला हमीर भी अस्त हो चुका है।

यों तो पहले भी एक से एक बढ़ कर यवन-सुल्तान हो चुके हैं जिन्होंने कुछ ही दिनों में चौरासी दुर्ग जीत लिये थे परन्तु इस गोरी सुल्तान ने तो एक ही दिन में ८४ दुर्ग जीते हैं। ऐसे विकट वीर और दुर्धर्ष योद्धा के सामने कौन टिक सकता है? और किसमें इतना साहस है जो उसकी तलवार के पानी के सामने ठहर सके? गोरी सुल्तान के बल पौरुष की कोई सीमा नहीं—उसने सब दिशाओं को जीत लिया है।

राजा प्रबलेश्वर (प्रबलदास) धन्य है उसका साहस श्लाघनीय है। क्योंकि उसने उस विकट आक्रान्ता से लोहा लिया—उसने न तो शत्रु के सम्मुख दीनता प्रदर्शित की और न अन्य कोई ऐसा कार्य ही किया जिससे उसका स्वाभिमान खण्डित हो। यह प्रबलदास की ही छाती थी कि उसने उस गोरी राजा से लोहा लिया जिसने दिशाएं कंपती थी।

दुर्ग अजेय गोरी राजा सहस्र-सहस्र नागरोण के निकट आ धमका। उसने आस पास चार कोस की सीमा में तम्बू आदि लगा कर नागरोण गढ़ को घेर लिया। गढ़ लोगों द्वारा घेरे की सूचना पाते ही प्रबलदास युद्ध के लिए सन्नद्ध हो गया। उसने प्रधान साथी सामन्तों और सैनिकों को आज्ञा पर लेख कर भी गढ़-रक्षा करने का प्रण लेने के लिए प्रेरित करते हुए कहा कि हमारे गढ़ की दृढ़ता मेरु-गढ़ के समान अविचल है चन्द्रमा भी उसके ऊपर से गुजरता हुआ डरता है। गोरी राजा ने अन्यान्य दुर्ग भले ही जीत लिए हों पर उसे यह दुर्ग लेना भारी पड़ेगा। समग्र संसार

का बल धारण करके भी वह अचल पर पार नहीं पा सकेगा— साहण साख मसार पैवस पार न पायिमइ' अचल को युद्ध के लिए सन्नद्ध देख कर गौरी ने उसके पास अपना दूत भेजा। दूत ने अचल को समझाते हुए कहा कि गौरी सुल्तान ने गामरोण लेने के लिए ऐसी विकट और विशाल वाहिनी सजाई है जो लंका तक को विजित करने में समर्थ है—

अचलसर अणपार दल सजियउ दीणव-तणउ ॥
लंका लेवणहार कोइ गौरी राव नाहुरणी ॥

अतएव उसे भी अन्यान्य हिन्दू राजाओं का अनुसरण करते हुए गढ़ छोड़ देना चाहिए—उसे आसम (गौरी) से लड़ कर अपना अंत निकट नहीं लाना चाहिए— 'अचल गढ़ आसम लरिवि अंत आपरउ न आणि। पर अचल नहीं माना। उसके कुछ सामंतों ने भी उसे समझाया पर वह अपने निश्चय से नहीं डिगा।

अचल ने कहा—सुल्तान चढ़ कर आया है तो हम सामना करेंगे। पहले भी शत्रु चढ़ चढ़ कर आये पर चौहान वंशीय क्षत्रिय अपने गढ़ को छोड़ कर कभी पलायित नहीं हुए— गढ़ भी वह मेली करि चालि न गढ़ चहुवाण"—तीनों वंशीय अचल भी शत्रु के सम्मुख कभी नहीं झुकेगा— नवइ न तीनी नीव गढ़ भी गढ़ मेल्ही करी।"

अपने स्वामी के युद्ध करने के दृढ़ निश्चय को सुन कर उसकी रानियाँ भी कुल लज्जा त्याग कर बाहर आयीं। मेवाड़ के राणा मोकल की पुत्री पुष्पा ने अचल से कहा कि 'हे! स्वामी युद्ध के समय जब आप शत्रु के पास न प्रवेश करेंगे तब मैं भी अपने तीनों भानु पिनु और श्वसुर-पक्षों को समुज्ज्वल कर दूँगी। यथा—

सामि तु सर आणि पइसिस महुपाई कहइ।
हउं उजालिसिमापक्षा, मेवे पक्ष तिणि साखि ॥

कछवाही रानी ने भी ऐसा ही उत्साह दिखाते हुए कहा—' नाथ! जब शत्रुओं के बाणों की वर्षा होगी तब मैं गढ़ की कोट पर खड़ी होकर आपके आगे आजाऊँगी। यथा—

बहु मेघूक बरसंत कोटे कछवाही कहइ।
तो आगी हीइसंम लडइ हउ कोसीया कंत ॥

बागड़ देश की सोलंकी रानी ने भी वीर-मंत्र को ही उत्कृष्ट बताया 'अमड मुंच मडिवाह, बोलइ सोलुणि बागडणी।

सन्नाणियों के ऐसे वीर संकल्प सुन कर छत्तीसों कुलों के क्षत्रिय युद्ध के लिए सन्नद्ध हो गये। रण-क्षेत्र में प्रवेश करने से पूर्व गढ़ के सभी सामंत-सैनिक अचलदास

से भेंट करने आये। सर्व प्रथम अचल ने अपने पुत्र पाल्हणसी से भेंट की। तदुपरांत कल्याणसिंह, जउणसिंह, कउलसी आदि सभी चौबीसो वंशों के क्षत्रियों से भेंट की।

इसी समय ४० सहस्र नारियों का समूह भी सामने आकर उपस्थित होगया। अचला प्रौढाएं और मोसी पोडसी बालाएं आदि सभी अपने अपने देवर जेठ भरतार के पुरुषार्थ को देखने की आकांक्षा से आप्लावित थी। इनमें अचल की माता सफलादे भी उपस्थित थी। पुण्या आदि रानियां अप्सराओं जैसी लग रही थी। गढ़ के प्रासादों के स्वर्ण मंडित कलशों के ऊपर फहराती हुई ध्वजाओं के सौंदर्य का वर्णन नहीं किया जा सकता।

उधर गौरी-सुलतान अपनी अपार सेना के साथ गढ़ को घेरे खड़ा था। अचल ने भी दुर्ग की रक्षा का पूरा प्रबन्ध कर लिया था। द्वार-द्वार पर ही नहीं पग-पग पर धनुर्धारी वीर सैनिक और स्थान-स्थान पर गज-सेना नियुक्त की गई थी। इस प्रकार गढ़ लेने वाले आक्रांता गौरी और गढ़-रक्षक अचल दोनों का बल-पराक्रम आश्चर्य जनक और भयावह था।

नगाड़े घड़घड़ाने लगे जिससे पृथ्वी और आकाश दोनों प्रकंपित हो उठे। आक्रम (गौरी) और अचल दोनों अड़ गये। युद्ध प्रारम्भ हुआ। धनुषों की प्रत्यंचाएं तनी बाणों की बौछार होने लगी रुधिर बह चला और कबंध नाचने लगे। इस प्रकार लड़ाकिन गौरी और छीपी अचलदास ने ऐसा भयंकर युद्ध रचा कि रात और दिन का अंतर मिट गया भूख और प्यास विस्मृत हो गई।

लड़ते-लड़ते, मरते-मारते एक अष्टमी के बीतने पर दूसरी अष्टमी आगई पर युद्ध का अंत न आया। विकट स्थिति देख कर अचल ने अपने साथियों से कहा कि मरण एक बार होता है और यह पर्व बार-बार नहीं आता। अतः कीर्ति की रक्षा होनी ही चाहिए-औहर जलाओ और शत्रु-पक्ष पर टूट पड़ो। सभी सामंत सैनिकों ने इस बात का समर्थन किया। सामंत नाहू डोड ने अचल को सुझाया कि हमें खालिशान और पवित्र तुलसी की माला धारण करके गौरी सुल्तान के [illegible] पर चढ़ दौड़ना चाहिए इस प्रकार यदि हमने प्राणों की बलि दी तो हमें सूर्य-मण्डल में स्थान मिलेगा-जितने पग शत्रु की ओर बढ़ायेंगे हम उतने ही अश्वमेध यज्ञों के पुण्य के भागी बनेंगे। अचल ने इस प्रस्ताव को अपने ही मन की बात कह कर स्वीकार कर लिया।

औहर जलाने का निश्चय होने पर तत्काल ही ४० सहस्र नारियां अग्नि स्नान करने के लिए प्रस्तुत हो गई। उनका अटल विश्वास था कि जैसे कबीर सोने को नहीं जीत सकता उसी प्रकार गौरी-राजा उन्हें नहीं जीत सकेगा—शक्तिस्वरूपा नारी के सम्मुख तो महाशक्ति शिव भी हार मान गये थे गौरी की तो बिसात ही क्या? अचलदास ने भी उन्हें इतिहास में वर्णित औहर-जौहर कीर्ति की पुनरावृत्ति करने हेतु प्रेरित किया।

राजकुमार बीरज को मेवाड़ाधिपति राणा मोकल के पास सहायतार्थ भेजा गया था पर उसकी अभी तक कोई सूचना नहीं मिली थी पता नहीं उस पर क्या बीती। अतएव अचल ने निज-कुल रक्षा के लिए अपने दूसरे कुमार पाल्हणसी से युद्ध विरत होकर अन्यत्र किसी सुरक्षित स्थान पर चले जाने को कहा। पर वीर-कुमार ने इसे कायरता का सूचक बता कर अस्वीकार कर दिया। ऐसी स्थिति में कुल-रक्षा के प्रश्न ने सब को चिंतित कर दिया। अचल की माता सलखादे और उसकी रानी पुण्या ने पाल्हणसी को समझाया कि मूल को स्थिर रखने के लिए बीज को सहज कर रखना ही पड़ता है। अतः उसका युद्ध से विरत होना कायरता नहीं कहलावेगी। फिर भी पाल्हणसी नहीं माना। इस पर अचल ने पाल्हणसी को संबोधित करके कहा कि "तू कायर है, कापुरुष है, क्योंकि तू केवल मरना चाहता है जीवित रह कर अपने उत्तर दायित्व का निर्वाह करना तुझे अभीष्ट नहीं।' बस वह इतना ही कह पाया था कि उसका गला भर आया। थोड़ा रुक कर फिर करुणा विगलित हो बोला 'अपने हितैषी सामंत-सरदारों का कहा करो और पाल्हणसी तुम युद्ध से विरत हो जाओ।" पाल्हणसी निरुत्तर होगया। अचल ने बाल-विह्वल होकर कुमार को गले से लगा लिया एवं अश्रु पोंछ कर उसे आशीर्वाद देते हुए कहा कि सारी धरा पर अपने प्रताप का प्रसार करो और गोरी-सुल्तान से मेरा वैर चुकाओ, उससे प्रतिशोध लो। अन्ततः विवश होकर पाल्हणसी को अपने पिता की आज्ञा का पालन करना पड़ा और वह अपनी माताओं से गले मिल मिल कर युद्ध से विरत हो गया।

अब जौहर सजा दिया गया, अग्नि प्रज्वलित हो उठी। वस्त्र-धारिणी क्षत्रिय वीरांगनाएं "हरि हरि" के उच्चारण के साथ जौहर की ज्वाला में प्रविष्ट होगईं।

जौहर जलाने के उपरांत गढ़ के द्वार खोल दिये गये। अचल के साथ उसके सभी क्षत्रिय सामंत-सैनिक तलहटी में उतर आये एवं शत्रु-दल पर टूट पड़े। भयंकर रक्त-पात और मार-काट हुआ। अचल अनेक शत्रुओं को धूलधूसरित करता हुआ अंत में स्वयं भी वीर-गति को प्राप्त हुआ—"जहा असुर जण थाक पाडे अचलेसर पड्यो।' उसने प्राणों के रहते अपना गढ़ शत्रु को नहीं सौंपा—"आपण दुरंग न अप्पियो जीवत आइल राह।' इस प्रकार अचल ने संसार में अपना नाम और स्वर्ग में अपनी आत्मा दोनों को अचल बना लिया- संसारि नाम आतम सरगि अचल कीआ अचल।

वस्तु-विवेचन

कथानिका की कथा अत्यन्त संक्षिप्त है। कथा संघटन भी सरल और ऋजु है, कहीं मोड़ नहीं कहीं घुमाव नहीं, सर्वत्र अविरल गति और स्वाभाविक प्रवाह है जिसका अवसान कथा के अंत में ही हुआ है।

कुल देवी की वन्दना और सरस्वती को स्मरण करके परम्परागत मंगलाचरण एवं परम्परा का निर्वाह किया गया है।

मूल कथा के आरंभ से पूर्व कथा के केन्द्रस्थ विचार (सेंटरल) आइडिया—जो कि निश्चित ही स्वाधीनता के गौरव एवं वीरत्व का प्रतिपादन करने वाला है—को अत्यंत ही सशक्त शैली में प्रस्तुत कर दिया गया है। यथा—

> सहजइ मयगल पगुलियउ अइं खंचइ तंइ बाह।
> सिंह गयत्थण जे सहइ तउ वह लक्खि विकाह॥

अचल नर-केसरी है वह कायर (हाथी) की भांति पराधीनता (बल-बन्धन) कभी सहन नहीं कर सकता फिर चाहे उसका सभी कुछ क्यों न स्वाहा हो जावे। यही वह मूल धुरी है—कथ्य का ध्येय वाक्य है—जिस पर समस्त कथा घूमती है।

गौरी सुल्तान अपार सेना संजोकर अचल पर चढ़ आया है असंख्य नरेश उसके साथ हैं और असीम उसका बल है। समस्त भू-तल में कोई ऐसा नर-नरेश नहीं जो उसके आगे टिक सके। अतएव वह अचल धन्य है जिसने उस विकट शत्रु से टक्कर ली— धन धन हो राजा अचलेसर। बारह जियउ जिणि पातिसाह सउं सांकड़ लियउ।' उस अचल को साधुवाद है कि जिसने सुल्तान के सम्मुख दैन्य प्रदर्शित करके अपने क्षत्रित्व को खंडित नहीं किया। वास्तव में अचल अचलता ही है। यथा—

तेणि पातिसाह आगा सांतरि सउ खाडि नही खग खांडइ नही दीस न माहइ पायर लंबित न होई ते राजा अचलेसर अचल गढ़ अचलेस ही हुई।'

यहां तक कवि ने अचल की जिस वीर-प्रकृति की ओर संकेत किया है आगे उसका उद्घाटन करके उसकी पूर्ण रूप से पुष्टि की है।

अचल युद्ध के लिए सन्नद्ध है। जीवीवंशीय नरेश कभी नहीं झुक सकता नवइ न जीवी नीव। उसकी रानियां भी मर-मिट-कर अपने तीनों पक्षों को उज्ज्वल बनाने को प्रस्तुत हैं—हूउं उजालिसि आपणा तेणो पक्ष तिणि ताहि। दुर्ग के द्वार बंद करके क्षत्रिय वीर परस्पर आलिंगन करने के उपरान्त शत्रु का सामना करने के लिए प्रस्तुत हो जाते हैं। एक अष्टमी बीत जाने पर दूसरी अष्टमी आवई पर युद्ध समाप्त न हु। अंत में जौहर जलाने का निश्चय किया जाता है। सब मर मिटने को प्रस्तुत हैं। यहीं अचल के सम्मुख अपनी कुल-रक्षा का प्रश्न आता है। फलतः कुमार पाल्हणसी को कुल-रक्षा एवं गौरी से प्रतिशोध लेने के निमित्त युद्ध से विरत होने को कहा जाता है पर वह इन्कार कर देता है। कथा का यह एक अत्यन्त ही मार्मिक स्थल है। कवि कथारम्भ में 'वीरत्व' को ही अपने ध्येय वाक्य के रूप में प्रतिपादित कर चुका है। ऐसी स्थिति में उसके लिए पाल्हणसी को युद्ध से विरत होता हुआ दिखाना कैसे संभव हो सकता था? पर कवि ने मानवीय संवेदना को आधार बना

कर इस दुष्कर कार्य को भी सफलतापूर्वक संपन्न किया है। विशेषता यह कि इसमें न तो कवि के अभीष्ट को ठेस पहुंची है और न ही पाल्हणसी के चरित्र का क्षय हुआ है। सब समझा बुझा कर हार गये हैं पर वीर-कुमार पाल्हणसी युद्ध में सम्मिलित होने के अपने निश्चय पर अटल है। परन्तु जब उसे कायर-कापुरुष कह कर उसकी वीर भावना को ललकारा जाता है तब वह सिंह पुत्र विह्वल हो उठता है पर दूसरे ही क्षण पिता की पलकों पर ठहरे हुए अश्रुकण उसे अपनी मनचाही बात मनवा लेते हैं। यह दृश्य इतना मार्मिक और संवेदनीय है कि इसे पढ़ कर पाठक की पलकें भी गीली हो जाती हैं। वात्सल्य और प्रेम, कर्तव्य और बलिदान एवं शौर्य और स्नेह का यहां एक साथ अद्भुत सम्मिश्रण उपस्थित हुआ है। यहीं कथा अपने चरमोत्कर्ष को प्राप्त होती है। इसके पश्चात् कथा का उतार प्रारंभ हो जाता है और शीघ्र ही रण-क्षेत्र में अचल की मृत्यु होने के साथ ही कथा का अंत हो जाता है।

इस प्रकार कवि अपने अभीष्ट के अनुरूप कथा-क्रम का संयोजन करके वीर भावना के तन्मयकारी प्रभाव की सृष्टि करने में पूर्णरूप से सफल हुआ है।

कथा के दो ही प्रधान विषय हैं—एक युद्ध और दूसरा जौहर इन दोनों में संतुलन बनाये रखने का सफल प्रयास किया गया है। हां, पीरी की सेना का वर्णन कुछ अवश्य बढ़ गया है पर ऐसा वीर-रस के परिपाक और युद्धानुकूल वातावरण के निमित्त ही किया गया है। अनर्गल वर्णनों की कुछ झांक तो इसमें है ही नहीं जो बात है वह कथा से सम्बद्ध है और उसके क्रम को आगे बढ़ाने वाली है—प्रत्येक खंड और कथा अतएव पूर्वापर के क्रम को जोड़ता हुआ कथा के विकास में सहायक बना है। कथानुबंध में न तो कहीं शिथिलता आई और न ही उसका प्रवाह कहीं अवरुद्ध हुआ है।

स्पष्ट है कि कथानिका की कथा में प्रभान्विति एकतानता क्रमबद्धता सुसंयोजन संतुलन एवं आवश्यक का समावेश और अनर्गल का बहिष्कार आदि सभी गुण समाविष्ट हैं।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि कवि ने किसी विशेष साहित्यिक विधा के नियमों में बंध कर कथानिका की रचना नहीं की है। युद्ध की जैसी घटना अपने यथार्थ रूप में घटी थी उसने अपने काव्य में उसे वैसा ही चित्रित कर दिया है। रचना-नैपुण्य के उद्देश्य से उसने अपनी ओर से कोई आयोजन नहीं किया है। अवश्य ही कवि ने शत्रु सेना की संख्या आदि देने में और उसके बल पराक्रम का वर्णन करने में अतिरंजना से काम लिया है पर, जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि ऐसा उसने वीर-रस के प्रतिपादन के लिए ही किया है।

कथा-मूल में जौहर एक युद्ध की घटना होने के कारण कवि ने वर्णनों द्वारा अपनी रचना का कलेवर बढ़ाया है। मुख्य-रूप से शत्रु सेना और जौहर से संबद्ध-दो

ही वर्णन इसमें आये हैं, कवि ने युद्ध वर्णन भी अधिक नहीं किया है सम्बन्ध-सूत्र जोड़ने वाली आवश्यक बात कह कर ही वह आगे बढ़ गया है। ओहार-वर्णन में कवि विशेष रूप से रमा है पर उसमें भी उसने बाह्य साज-सामानों का वर्णन न करके विभिन्न पात्रों की चारित्रिक विशिष्टताओं को प्रकट करने वाले भावों का ही वर्णन किया है। इससे कथा में नवीनता और रोचकता आई है।

चरित्र-चित्रण

वचनिका में जीवन की सरस और स्वाभाविक अभिव्यक्ति हुई है। इसके पात्र प्रायः एक ही कोटि के हैं। अचल-पात्रों का कथा-क्रम के निमित्त नामोल्लेख भर हुआ है। शेष सभी क्षत्रिय पात्र समान संस्कारों और आदर्शों से मण्डित हैं। कर्म्म-विषय के युद्ध की सूचना तक ही सीमित होने के कारण प्रायः सभी पात्रों का चरित्र जितना व्यक्त हुआ है उतना विकसित नहीं हो पाया है। यह स्वाभाविक भी है। क्योंकि वचनिका युद्ध-प्रधान रचना है—उसके सभी पात्र वीर प्रकृति के हैं। वीर के चरित्र में अंतर्द्वन्द्व विशेषकर युद्ध के अवसर पर, जबकि प्राण की बाजी लगी हो—के लिए कोई स्थान नहीं होता वह तो कर्म-भावना से प्रेरित होकर निज धर्म और कुल-गौरव की रक्षार्थ सदैव मरने-मारने को प्रस्तुत रहता है। परिणाम की चिन्ता या भावना का भय उसे नहीं होता। फलतः वह द्वन्द्व की स्थिति में भी नहीं रहता। वचनिका की पात्र-सृष्टि में हम यही सब कुछ देखते हैं फिर भी शिवदास ने मानव-मनोवृत्ति को पहचानने में समर्थ अपनी सूक्ष्म-बुद्धि से अचलदास और कुमार पाल्हणसी को द्वन्द्व की स्थिति में लाकर उपस्थित किया है वह निश्चित ही उसे उत्कृष्ट कोटि का कवि सिद्ध करने वाली है।

वचनिका में पात्र कई एक हैं पर उनमें अचल और कुमार पाल्हणसी ही दो ऐसे चरित्र हैं जिन पर पाठक का ध्यान केन्द्रित होता है। शेष पात्रों में अपनी कोई विशिष्टता नहीं है वे अचल के चरित्रोत्कर्ष में ही सहायक हुए हैं। अस्तु।

अचलदास खीची

वचनिका का नायक स्पष्टतः अचलदास है। सम्पूर्ण कथा-क्रम का केन्द्र वही है और सारी बातें उसी को लेकर आगे बढ़ी हैं। अचल वीरोचित प्रकृति का वीर क्षत्रिय नरेश है। वह कर्म से और भावना से बुद्धि एवं विचारों से स्वच्छंद और स्वाभिमानी है।

ऐसे समय में जबकि भारत भूमि विदेशी आक्रांताओं से पद-दलित हो रही है, पराक्रमी हिन्दू नरेशों के गौरव-तेज का सूर्य अस्त हो चुका है एवं तथा कथित हिन्दू नरेश पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष की भावनाओं की तुष्टि और अपने क्षुद्र स्वार्थों की

सिद्धि के लिए विदेशियों के पिट्ठलग्गू बन देश को रसातल की ओर घसीटने में लगे हैं अचलराज एकमात्र ऐसा और स्वाभिमानी नरेश है जो निज धर्म और स्वाधीनता की रक्षार्थ अपार शक्ति संपन्न शत्रु से जूझने को प्रस्तुत है।

कवि ने अचल के साहस-गुण को व्यक्त करने के लिए गोरी के बल-तेज का नितान्त ही अतिरंजित वर्णन किया है।

गोरी दानव की भांति असंख्य सेना लेकर अचल पर चढ़ आया है, पर वह भयभीत नहीं है। साहस और धैर्य का धनी अचल शत्रु को आत्म-समर्पण करना तो दूर रहा उसके सम्मुख दीनता तक प्रदर्शित नहीं करता। यथा—

तेणि पतिसाह आयां सांभरि सत साहि नही सब छांडइ नही दीन न भाखइ पागर लंबित न होइ ते राजा अचलेसर सारिखा अचल नर अचलेस ही हाई।

निश्चय ही अचल धन्य है कि उसने गोरी जैसे सब-शक्तिमान शत्रु से लोहा लिया धन्य-धन्य हो राजा अचलेसर बारह जिणि पातिसाह सउं छांडउ लिवउं।

अचल के युद्ध-निश्चय की सूचना पाकर गोरी उसके पास अपना दूत भेजता है। दूत उसे समझाता है कि गोरी सुल्तान ने दानव की भांति अपार सेना सजाई है—दल साजिवउ दाणव तणउ—अतएव उसे उससे (गोरी से) लड़ कर अपने कुल को निर्मूल नहीं देना चाहिए—अचल अडे आलम सरिस मंत आपरउ न आणि' और अन्यान्य हिन्दू राजाओं की भांति उसकी अधीनता स्वीकार कर लेनी चाहिए। पर अचल अपने निश्चय से नहीं डिगता है। दूत को उसका उत्तर है कि खीची नरेश कभी किसी के आगे नहीं झुकता—नवई न खीची नीव। शत्रु को अपना दुर्ग सौंपने का विचार ही उसके लिए मृत्यु तुल्य है—हिपउ न होइ मरण हुवइ गढ मेलिवउ। उसे पूर्ण विश्वास है कि गोरी राजा उसे कभी भी नहीं जीत सकेगा सर गोरी राव नयउं सरइ जिहि भांति न पांति'—वह सदल-बल उसके सम्मुख धूल लिप्त होगा। यथा—

साहण साक न सार पैदल पार न आणिवइ।
गुडियइ गोरी राव—कइ मइंगल सबल अपार॥

अपने इसी विश्वास के बल पर वह एक माह तक वीरता-पूर्वक गोरी के हमले से दुर्ग की रक्षा करता है। इसके बाद अपने पक्ष की दुर्बलता स्पष्ट होजाने पर भी वह शत्रु के सम्मुख नत-मस्तक होने की बात नहीं सोचता अपितु मरण को अवश्य पर्व के रूप में स्वीकार करके-मरण तव ऐक वार नाउं इसउ प्रव वार-वार-क्षत्रिय वीरांगनाओं को जौहर जलाने के लिए प्रेरित करता है। यथा—

'अवइ तम्हइं मउं करउ ज्यउं जोयइ जौयाइत के वरि जउहर हुआ.. .. तिहुं जउहरां जिका बात ऊणी हुयी हुवइ रया तम्हइ पूरी करि दिखालउ पूरी हुयी हुइ रया पमरेपि वाहुडि उबीसउ।

इस प्रकार प्रबल के चरित्र में सभी वीरोचित गुणों का समावेश हुआ है। उसका निश्चय विश्वास और आदर्श सभी उसके नाम की ही भांति प्रबल है।

यहां तक प्रबल के व्यक्तित्व के कठोर-पक्ष का ही उद्घाटन हुआ है। आगे चल कर उसका कुल रक्षा के विचार से चिंतित और पुत्र प्रेम से विह्वल जो रूप सामने आता है उसे देख कर तो पाठक का मन अभिभूत हो जाता है। निश्चित ही प्रबल उस पार्वतीय प्रस्तर-खण्ड के समान है जो ऊपर से कठोर और रूक्ष दिखाई देने पर भी अपने अन्दर निर्मल जल की स्निग्ध धारा छिपाये रखता है।

प्रबल अपने कुल-रक्षा के प्रश्न से चिंतित है—इउ तउ सउ चिंता वसणु—उसे तभी संतोष हो सकता है जबकि उसके दोनों कुमार वीरम और पाल्हणसी सुरक्षित घर आयें, इसी में उसका हित है अन्यथा उसके कुल का नाश निश्चित है—

उहां बीरी ऊबरे इहा पाल्हणसी बीसरे तो सब बात सबरी नही तो राजा कह समरणी गई हमरी।

प्रबल की इस मनोवृत्ति को देख कर संशय हो सकता है कि वह निज कुल-रक्षा के लिए अपने पुत्रों की प्राण-रक्षा करने की हीन भावना से ग्रस्त है। संशय एक दम निराधार भी नहीं लगता क्योंकि जब सभी क्षत्रिय नर-नारियां मर-मिटने को प्रस्तुत है तभी प्रबल अपने पुत्रों की प्राण रक्षा की बात करता है। परन्तु तथ्य यह न होकर कुछ और ही है।

पाल्हणसी अपने पिता की आज्ञा की अवहेलना कर जब युद्ध से विरत होने के लिए राजी नहीं होता तब प्रबल उसे फटकारता हुआ कहता है कि वह (पाल्हणसी) कायर-कापुरुष है क्योंकि वह मरने के लिए अपने भावी पुत्र उत्तरदायित्व से बचना चाहता है। यथा—

यउ तउ कायर कापुरिस नू हुइ तउ यउ ही बहउ विस..... ...मन वह न चाहइ। बाद की प्रति में यह भाव अधिक स्पष्ट है यथा—यो तो थी कायर घर का पुत्रज। वह यदि पाल्हेसा को असहयोग भाव वाले नहीं यहे थी मरवाडी का मीसा'

प्रबल के इस कथन से उपर्युक्त संशय पूर्णतः निर्मूल सिद्ध हो जाता है। आगे उसने आंखों में पानी भर कर पाल्हणसी को अंक में भरते हुए जो शब्द कहे हैं वे भी उसके वीरचेतनी चरित्र की उच्चाशयता को उभार कर प्रकट कर देते हैं। यथा—

बनडी की नाई सकल ही प्रथमि प्रतिपिज्यउ भउ यह लीज्यउ हमरउ बहर सुरिताण योरी राजा सउं कीज्यउ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कुमार पाल्हणसी का युद्ध से अलग रखने के पीछे प्रबलदास की अपने पुत्र को जीवित रखने जैसी कोई हीन भावना नहीं है अपितु अपनी वंश परंपरा को स्थायी रखने के साथ ही अपने कुल-गौरव की पुनर्प्रतिष्ठा करने का भाव

ही है। अचल ने पितृ-प्रेम के वशीभूत होकर पाल्हणसी को युद्ध से अलग नहीं किया है अपितु उसे एक महान उत्तरदायित्व के निर्वाहार्थ प्राण देने के लिए जीवित रखा है।

यह शिवदास की सच्ची हुई मेहनती का ही कार्य था कि उसने अचल को इस युद्ध-संग्राम में डाल कर भी उसके चरित्र की निर्मलता और उच्चाशयता को कोई आंच नहीं आने दी। वीरता और प्रेम का जैसा अनूठा संयोग अचल के चरित्र में हुआ है वैसा अन्यत्र मिलना दूभर ही है।

अंत में अचल जीहर जला कर अपने वीर साथियों के साथ शत्रु संहार करता हुआ वीर गति को प्राप्त होता है—बगा मगुर बण बांद पाडे अचलंनर पड्यो।

उसने प्राणों के रहते अपना दुर्ग शत्रु को नहीं दिया—"आपरुं दुरंग न अपिस्यी जीवत जाइल—राइ। इस प्रकार कवि के शब्दों में अचल ने संसार में अपना नाम और स्वर्ग में अपनी आत्मा को अचल (अमर) बना दिया— संसारि नांव आतम सरगि अचल कीधा अचल।

पाल्हणसी—

चरित्र चित्रण की दृष्टि से कुमार पाल्हणसी कथानिका का एक महत्वपूर्ण पात्र है। जिस अंतर्द्वन्द्व से होकर उसे गुजरना पड़ा है वह किसी भी व्यक्ति के चरित्र की कसौटी कहा जा सकता है। शत्रु सर पर है। स्व—पक्ष की शक्ति क्षीण देखकर निजधर्म की रक्षार्थ दुर्ग का कण्ठा-कण्ठा कर मिटने को प्रस्तुत है पर पाल्हणसी को दुर्गरक्षा का वास्ता देकर युद्ध से विरत हो जाने के लिए विवश किया जाता है। यहीं माता-पिता की आज्ञा और अन्यान्य हितैषी-जनों की सम्मति है। एक ओर पुत्र-धर्म है तो दूसरी ओर वीर-धर्म। पाल्हणसी किसका वरण करे? पुत्र धर्म का निर्वाह करने पर अपयश और कलंक का भागी बनने की पूरी आशंका है और वीर-धर्म पर अटल रहने से पितादि की अंतिम आज्ञा का उल्लंघन होता है। कैसी दुविधा है? कैसा धर्म-संकट है? पर चूंकि पाल्हणसी वीर संतान है अतः वीर-धर्म का निर्वाह करना ही उसे अभीष्ट है। इसीलिए सबके समझाने बुझाने पर भी वह युद्ध से विरत होने की बात मानने को प्रस्तुत नहीं। पितृ-आज्ञा की अवहेलना करके भी प्राण देकर भी-वह वीर बना रहना चाहता है। पर जब उसके 'वीरत्व' पर ही शंका करके उसे अपने उत्तरदायित्व से जान छुड़ा कर भागने वाला कायर कापुरुष कह दिया जाता है तब तो वह वीर-युवक विह्वल हो उठता है—तिलमिला-जाता है। प्राणों पर खेलने वाले अपने वीर पिता की पलकों पर छलकते हुए आंसुओं को देख कर तो उसकी यश-अपयश आदि की सभी भावनाएं काफूर हो जाती हैं और जब अचल आंसू पोंछता हुआ उसे अंक में भर कर—आंसू पूंछि अंकमाल लियउ-संपूर्ण धरा पर अपने प्रताप का प्रसार करते अपने शत्रु

अनन्वय— १ अवहर अवहर जैहुवा

रूपक— १ तर पु दिय समसी

२ सखि वमणो सिय सिव करे पैसे पावक माहि

३ पंखि-पंखि पडंति मंडोलि हस्ती की गज घटा

उत्प्रेक्षा—

१ कुल बहुवा वीसे जैवन ऊगा किरि आसीस

छंद

वचनिका एक छोटी सी रचना है जिसमें गद्य और पद्य कुल मिलाकर ८४ अवतरण हैं गद्य खण्ड केवल ११ हैं शेष दूहा ६१ सोरठा ३ गाहा २ गाथा १ रसावला १ कुंडलिया १ और २ कवित्त ७३ पद्यावतरण हैं।

वचनिका में अंतमेल दूहे का ही अधिक प्रयोग हुआ है। यथा—

धणा अतुर धण आई पाडे अवसेसर पड्यो।

आपण वरंप न अणिपी जीवत आइस-राइ॥

भाषा-शैली

कवि शिवदास की रचना का एकमात्र लक्ष्य अपने आश्रयदाता अचल के आदर्श और वीर-चरित्र का उद्घाटन करके उसका कीर्ति-स्तवन करना है। इसके लिए उसने तत्कालीन भारतीय समाज की पतितावस्था के चित्रण को अपना आधार बनाया है।

मध्य-युगीन भारत का इतिहास हिन्दू-जाति के अध पतन का इतिहास है। यह वह समय था जब हमारी प्राचीन संस्कृति लुप्त हो चली थी राजस्थ-काल भोग-विलास में लिप्त था—पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष ने उसकी शक्ति का क्षय कर दिया था—सामंत वर्ग अपने संकुचित स्वार्थों की सिद्धि के लिए विदेशियों की चाटुकारी में लगा हुआ था। और मध्यम एवं निम्नवर्ग के सामने अपने भरण-पोषण की समस्या ऐसा विकट रूप धारण कर चुकी थी कि देश प्रेम और राष्ट्रीय एकता की भावना से उनका दूर का भी कोई सम्बन्ध नहीं रहा था। देश की ऐसी हीन और पतितावस्था में यदि कोई नरेश निज-धर्म स्वाभिमान और स्वाधीनता की रक्षा करता हुआ पाया जाये तो वह निश्चित ही अचल कीर्ति का अधिकारी है। देश की तत्कालीन पतितावस्था की ओर संकेत करके कवि शिवदास ने अचल को एक ऐसे ही वीर और आदर्श क्षत्रिय नरेश के रूप में चित्रित किया है।

प्रायः सभी क्षत्रिय-नरेश हत-प्रभ निर्वीर्य होकर अपने उच्चादर्श से गिर गये हैं। सामंतों, धर्म-पंडितों आदि का साहस और तेज भी जाता रहा है। वे अपने कर्त्तव्य

में तो शेर होते हैं पर उनमें इतना सामर्थ्य शेष नहीं कि वे यवन-शत्रुओं का सामना कर सकें। यथा—

(क) उत्तर दक्खिन देस पूरब पच्छिम तणा।
बहिया सउंसालिम कटक नमिया सकम नरेस ॥

(ख) हरकंप हिंदूकार नर नर प्रति हूवउ पणउ।
मिलियइ मंडपराह-कइ कुण उपरइ संघार॥

(ग) तई पतिसाह तणइ पायाणउ पारंभ सूणी।
हलहलिया हैकाणवइ नडपति नमे नमेह ॥

वीर-प्रसवा भारत-भूमि में कोई ऐसा वीर शेष नहीं रहा है जो शत्रु से लोहा लेने की बात तो दूर उसके प्रति कुपित होने तक का साहस कर सके। सोम सातल कान्हडदेव और हठीले हमीर जैसे वीर और पराक्रमी हिन्दू नरेशों का युग तो बीत गया है। कायर बन रहे हैं। यथा—

इसउ हिन्दू राजा उपकेठि कउण छइ जिकई मनि पतिसाह की रीस बसी कउण का माथा-उई जिसी कउण हुइ उई कउउ कउण की माई पिवाणी जू सामउ रहइ अणी पाणी, आज उउ सोम सातल कान्हडदे नहीं जिसक उपरि उउ गहिलउउ नहीं तीहउरि रउमू नहीं हठ को राउ हमीर आवम्मउ।'

ऐसी स्थिति में धन्य है वह अचलदास जिसने चारों दिशाओं को जीतने में समर्थ गोरी-सुल्तान तक के आगे सिर नहीं झुकाया—

अउ तउ पातसाह उत्तर दक्खिन पूरब पच्छिम—कउ जइतवार इका पुरुखा रव नहीं पाइवार मन मन हो राजा अचलेसर। चारउ जियउ जिणि पतिसाह सउं खांडउ लियउ।

स्पष्ट है कि कवि ने अपने चरित-नायक के महत्व का प्रतिपादन एक सुदृढ़ भित्ति पर किया है। पहले उसे एक ऊँचाई पर लाकर प्रतिष्ठित करके उसे पाठक की श्रद्धा का अधिकारी बनाया है तदुपरान्त उसे आशीर्वाद दिया है। इस प्रकार कवि ने पाठक को उसी मनोभूमि पर अवस्थित कर दिया है जिस पर रह कर उसने काव्यरचना की है। उसकी शैली का यह कौशल प्रशंसनीय है। अस्तु।

अचलिका गद्य-पद्यमय शैली में रचित वीर रसात्मक काव्य है। शिवदास गद्य और पद्य दोनों शैलियों का सफल प्रयोक्ता है।

अचलिका की गणना राजस्थानी गद्य की प्रथम प्रौढ़ गद्य रचनाओं में की गई है। यद्यपि इसमें पद्य की तुलना में गद्य बहुत कम प्रयुक्त हुआ है फिर भी वह इतना प्रौढ़ सुष्ठु और अर्थ-गुणसंपन्न है कि उसके आधार पर राजस्थानी भाषा अपने परिवार

की अन्यान्य भाषाओं के प्रारंभिक गद्य-साहित्य के क्षेत्र में निश्चित ही शीर्ष स्थान की अधिकारी बन सकती है।

शिवदास की गद्य शैली में एक सहज और सरल प्रवाह है। जैसे सरिता के स्वाभाविक बल प्रवाह के साथ रजकण आगे बढ़ते चलते हैं और उसकी गति को प्रगट करते हैं उसी प्रकार वाक्य का प्रत्येक शब्द कवि की भाव-धारा के अनुसार अभीष्ट अर्थ को व्यक्त करता हुआ वर्ण्य विषय को स्पष्ट और अग्रसर करता हुआ चलता है। कवि की भाव-धारा कहीं भी शब्दों के बोझ से दब कर अवरुद्ध नहीं हुई है। भाव जितने सहज और स्वाभाविक हैं उतनी ही उनकी अभिव्यंजना सरल और स्पष्ट है। यथा—

तेणी पातिसाह आया सांतरि कुण सहइ ? कुसइ सहिवइ ? कुस की कुस्ती ? कुस की प्राती ? कुस की माइ बियाणी जू सामइ रहइ अली पाली ?

तेणि पातिसाह आयो सांतरि सत छाडि नहीं बल छांडइ नहीं दीण न मानइ पावार न संचित होई ते राजा अवलेसर सरिखा अवल नइ अवलेस ही हाई

यहां कवि का अभीष्ट अवल के साहस और तेज की व्यंजना करना है। इसके लिए उसने अवल के भौतिक सामर्थ्य और शक्ति का वर्णन नहीं किया है अपितु प्रतिपक्ष के बल और पराक्रम का निदर्शन मात्र करके अपने अभीष्ट की सिद्धि करली है। अभीष्ट भाव जैसे प्रश्न-चिन्हों की सीमा की अवहेलना करता हुआ एक दम अंतिम वाक्य तक आकर वांछित प्रभाव की सृष्टि करके नितांत ही स्वाभाविक रूप से अभिव्यक्त होगया है।

शिवदास की गद्य-शैली की एक अन्य और महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उसका प्रत्येक वाक्यावरण चाहे वह बड़ा हो या छोटा अपने आप में एक पूर्ण भाव या विचार लिए हुए है। यथा—

पिखी कबीर न जीपइ कनक हुइ एतउ न जीपइ हम-हुइ सिव सक्ती सब खुसती सिव हारमइ जीत्यउ सकति ऐ बडी बडाई हुइ कमण गति जू अम्हे मूवा की पैल मरां माइ-बाप बीसरां, तीन पख ऊबरां।

यहां कवि ने गिने-चुने शब्दों में क्षत्रिय नारी की वीर भावना और उदात्त चरित्र की संक्षिप्त किन्तु अपने आप में पूर्ण और मार्मिक झांकी प्रस्तुत करदी है। मूवा की पैल मरां'—मृत पति के साथ सती होने से तात्पर्य है। इस छोटे से वाक्य में कवि ने सारी बात के बीज भाव को व्यक्त कर दिया है। आगे के दो वाक्य उसी की पुष्टि करने हेतु प्रयुक्त हुए हैं। प्रथम वाक्य के 'कबीर' और 'कनक' शब्द क्रमशः यवन संस्कृति और आर्य संस्कृति के प्रतीक बन कर आये हैं।

शिवदास ने अधिकतर गद्य रचना में वचनिका-शैली (तुकांत गद्य-शैली) का ही प्रयोग किया है पर कहीं-कहीं उसने साधारण गद्य को भी अपनाया है। यथा

'... ...सांतरि थावलइ दमि पाली पाछिमइ दसि पादम बहु आइ मेह उडती आइ दूसरइ विकपाडि ।'

जहां कवि ने तुकांत गद्य-शैली ग्रहण की है वहां भी उसने कृत्रिमता नहीं आने दी है। तुक निर्वाह के लिए न तो उसने शब्दों को तोड़ मरोड़ कर गढ़-जोड़ बिठाने का प्रयास किया है और न ही वाक्य रचना के साधारण नियम को ही भंग किया है। यथा—

इसा-ऐक तइ पातसाह रा कटक-बंध मचनेसर ऊपर छूटा बाट-का छइ—इंधल चू डा, डोड का पाली तूंग परवतो सिरि पंच माया बुघट कट माया, सूर सूझइ नहीं मेह माया"

यहां न वाक्य-विन्यास अस्त-व्यस्त हुआ है और न भाषा प्रवाह अवरुद्ध। 'छूटा' 'छूटा' 'तूटा' 'माया' 'माया' एवं 'माया' शब्द तुक निर्वाह की दृष्टि से जितने स्वाभाविक हैं, उतने ही वर्ण्य वस्तु के अनुकूल भी।

पद्य लिखने में शिवदास जितना चतुर है उतना ही पद्य रचना में समर्थ भी। वह एक नैसर्गिक कवि है। भाव संकुल हृदय और सहज सुन्दर वाणी के योग से उसकी कविता बनी है। अलंकार चमत्कार और वक्र व्यंजना कौशल से वह रीता है। दिल की बात खुल कर खुले शब्दों में कह देना उसका गुण है। हार्दिक अनुभूति की सहज और अकृत्रिम अभिव्यक्ति को यदि कविता कहा जाय तो शिवदास निश्चित ही एक सफल कवि है। उसकी अनुभूति जितनी सरल है उतनी ही उसकी अभिव्यक्ति सरल है। यथा—

एकइ बलि बसंतडा अवर अंतर काइ।
सीह कवडी मह सहइ पइवर लक्षि विकाइ॥
पइवर मलइ पलाविवउ नहं खंचइ तहं जाइ।
सीह मलइ पलाविवउ तउ वह लक्षि विकाइ॥

इन पंक्तियों में कवि का अभीष्ट भाव—स्वाधीनता की गरिमा परिपक्व होकर अभिव्यक्ति हुआ है। एक एक शब्द भाव लहरि से बंधा है। प्रथम चरण में एक प्रश्न उठा कर जिज्ञासा उत्पन्न की गई है जो द्वितीय चरण में आकर कुतूहल का रूप धारण कर लेती है और अंतिम के दो चरणों में नितांत ही मार्मिक ढंग से उसका समाधान कर दिया गया है। स्पष्ट है कि कवि ने भाव पद्य रचना के इस रूप में लेखनी चलाई है, वह सर्वत्र एक भाव या विचार को लेकर अग्रसर हुआ है।

कवि ने प्रायः वर्णनात्मक शैली, उसमें भी प्रत्यक्ष कथन पद्धति का अपनाया है। उसने शब्दों को कहीं भी काट-छांट कर निरर्थक रचना नैपुण्य प्रदर्शित करने का प्रयास नहीं किया है यथा—

(क) बारह सयलन छह नव पहलन
महिमता चउरासी मइंगल
साहण सहस तीस भर तेरह
आसमसाह बडी बत फेरह

(ख) आसम अवनेसरि अल्ला एही बेक अवरक
पिवि पेखा हींदू पडइ तेता सहस तुरक

जौहर की ज्वाला में प्रदीप्त राजपूत वीरांगनाओं के तेज आर्य वीरत्व की भावना से प्रेरित मरणातुर अचलदास का खड्गधारी रूप और अन्यान्य लक्षित योद्धाओं के त्याग और बलिदान ने कवि के अन्तर्मन में एक आवेग की सृष्टि करदी है उसी आवेग में रह कर उसने रचना की है। यही कारण है कि उसकी कविता स्वयमेव स्फुरित हुई है उसके लिए उसे कोई विशेष आयोजन नहीं करना पड़ा है। वस्तुतः उसने कविता की नहीं है कही है। यथा—

पाल्हणसी पुहवि हि रहयउ अलि सवइ-या सरणि।
तिण वेला हीया भरी राइ राइ रोवण लगि॥

यहां कवि ने जौहर की ज्वाला में भस्म होने को प्रस्तुत रानियों की कुमार पाल्हणसी से अंतिम भेंट का कितना सजीव और मार्मिक चित्र खींचा है। अलंकार चमत्कार से दूर शब्दों की कतर ब्योंत से परे और वक्र व्यंजना से रहित अन्तर्जगत की अनुभूति की यह अभिव्यक्ति इतनी सरल और प्रभावशाली है कि पढ़ते पढ़ते पाठक का मन द्रवित उठता है। जिला देने (प्रभावित करने और आलोडित करने टू इंस्पायर टू मूव टू डिलाइट) को ही कविता का प्रयोजन कहा गया है। उपर्युक्त दोहे में इन गुणों के साथ ही उद्वेलित करने का भी गुण है। संभवतः इसी से प्रभावित होकर पाश्चात्य साहित्य मनीषी डा० टैसीटोरी ने आलोच्य कृति को डिंगल साहित्य की महान कृति (दी बेस्ट क्लासिकल मोडल) कहा है।[1]

वचनिका की भाषा पुरानी पश्चिमी राजस्थानी है जिसमें यत्र-तत्र पूर्व रूप भी दिखाई पड़ते हैं। कवि का भाषा पर पूरा अधिकार है। वह शब्दों को गढ़ने संवारने वाला कारीगर कवि नहीं है पर उसे प्रसंगोपयुक्त और भावानुकूल शब्दों की बड़ी पहिचान है। इसी पहिचान के कारण उसकी रचना बहुत लोकप्रियता की भागी बन सकी है। उसने शब्दों को गढ़ कर नहीं अपितु परख कर उनका उपयोग अपनी रचना में किया है। यथा—

तइ पतिसाह तणेह पयाणउ पारंब सुणी।
हुलहुलिवाहेकालवद बडपति मनि मनेह॥

१—डा० टैसीटोरी : वचनिका राठोड रतनसिंह जी महेसदासोतरी इंट्रोडक्शन पृ० ६

यहां शब्द जितने सार्थक हैं, उतने ही व्यंजनापूर्ण भी। रेखांकित शब्दों से जहां योद्धाओं की प्रस्थान गति ध्वनित हुई है वहीं उनकी मस्ती और उन्मत्त उत्साह के भाव भी व्यक्त हो गये हैं।

वीर रसात्मक काव्य रचना करके भी कवि ने संयुक्ताक्षर शैली का प्रयोग नहीं किया है। ट' कार ड' कार आदि कोमलवर्णक शब्द तो इसमें ढूंढने पर ही कहीं मिलेंगे। साधारण शब्दावली का प्रयोग करके भी कवि ने उसमें वीर रसानुकूल ओज गुण का संचार कर दिया है। यथा—

हरकंप हिंदुवार घर घर प्रति हुवउ घणउ।
मिलियइ मंडल राइ कर कुण उपरइ संचार॥

इस दोहे का प्रत्येक शब्द वीरों के बल पराक्रम को व्यक्त करने वाला है। कहीं न तो कोई शब्द फालतू है और न ही निरर्थक।

कहीं कहीं तो शिवदास ने दो-चार शब्दों में ही पूरा भाव सम्प्रेषण व्यक्त कर दिया है। यथा—

नवइ न छीपी नींद'

दोहे के ग्यारह मात्रा के इस एक चरण में अवसर के समस्त आतीव संस्कार और वीर भाव एक साथ व्यक्त होगये हैं। कवि की भाषा की समाहार शक्ति का यह सुन्दर उदाहरण है। सूत्रात्मक शैली के दो एक उदाहरण और दृष्टव्य हैं—

(क) गजउ गंज मडिवाइ
(ख) भरतखंड हुइ एकवार मांड इसउ प्रव पाइवउ बार-बार

बड़े बड़े प्रसंगों की योजना के स्थान पर मूल-भाव को स्पष्ट करने वाले ऐसे छोटे छोटे सूत्रात्मक वाक्यों को रख कर कवि ने अपनी रचना को अनावश्यक विस्तार से बचा लिया है।

कवि की भाषा का सौंदर्य उन स्थलों में विशेष रूप से दर्शनीय है जहां उसने डिंगल के अनुरणनात्मक शब्दों का प्रयोग किया है। ऐसे स्थलों में शब्द ध्वनि से ही अभीष्ट अर्थ की व्यंजना होगई है। यथा—

(क) बिहु दिही बाणावली सर पु डिग सलली
अणी अणी आतुली छाम छाना छली
कंचिर पर एसवली बहुनाचे कुमुद महाबली....
(ख) तंह संचरु तह सुक पु अलियउ पर बम चली....

वचनिका में अधिकतर डिंगल के अपने शब्द ही प्रयुक्त हुए हैं, फिर भी उसमें संस्कृत के तत्सम तद्भव शब्दों की कमी नहीं है। कुछेक अरबी फारसी के शब्द भी इसमें आये हैं पर उन्होंने राजस्थानी चोला धारण कर लिया है।

यत्र उन मुहावरों का भी प्रयोग हुआ है। यथा—मन भलेरा कज्जण—हद दई बठ्ठ कज्जण की माथा तंदखिली कहण की माह निवाणी सामउ रहइ मणी पाली सोनउ घर मु-वास दूध मांहि साकर पडइ आदि।

पूरी रचना को पढ़ कर कहा जा सकता है कि कवि ने अपनी रचना के प्रारंभ में सोनउ घर मु-वास एक मनम घर कज्जइ शिवदास कह कर अपनी प्रतिभा और वर्ण्य विषय के प्रति जो गर्व व्यक्त किया है, उसमें कोई अत्युक्ति नहीं है।

भाव—व्यंजना

शिवदास ने वचनिका की रचना आवेशमयी मनःस्थिति से प्रेरित होकर की है। यह आवेश भाव-जन्य है। अचलदास खीची एवं उसके साथ अन्यान्य अनेक क्षत्रिय वीर नर-नारियों ने निज-धर्म और जातीय गौरव की रक्षार्थ अपने प्राणों की आहुति देकर जिस आदर्श की स्थापना की है वचनिका उसी की भावमयी अभिव्यक्ति है। फलतः वचनिका में सर्वत्र क्षत्रिय-जाति के साहस और धैर्य एवं त्याग और बलिदान की भावनाओं का ही प्रतिपादन हुआ है—इससे उसमें बहुत ही वीर-रस का उद्रेक हो गया है।

वचनिका का प्रधान और अंगी रस है वीर' और वीर-रस का स्थायी भाव है उत्साह'। उत्साह' में आश्रय-पक्ष के औचित्य का अद्भुत बड़ा महत्व है। उत्साही जिस दृष्टि से कर्म को देखता है और लोक जिस दृष्टि से उत्साही तथा उसके कर्म को देखता है वही दृष्टि उत्साह के रसास्वादन में अद्भुत कार्य करती है। लोक ने इनमें यदि किसी प्रकार का अनौचित्य पाया तो समझ लीजिये कि उत्साह का रसास्वादन नहीं हो सकता। उत्साह सदैव सात्विक पक्ष को लेकर चलने वाला भाव है और सात्विकता सदैव लोक-संमत ही होती है।[1] अतएव वीर-रस की निष्पत्ति के लिए यह आवश्यक है कि पहले आश्रय-पक्ष के उत्साह' का औचित्य निरूपित करके उसे लोक संमत सिद्ध कर दिया जाये। शिवदास ने ऐसा ही आयोजन किया।

आलंबन-पक्ष (गोरी-पक्ष) सबल-बल आश्रय-पक्ष (अचल-पक्ष) की 'स्वाधीनता का अपहरण करने के लिए बढ़ आया है।[2] उसका यह कृत्य किसी भी दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता। पाठक या लोक उसे कभी न्याय-संगत स्वीकार नहीं कर सकता। अपने विरुद्ध इस दुर्नीति संधि को देख कर आश्रय-पक्ष में प्रतिक्रिया-स्वरूप

१—श्री बटेकृष्ण वीर रस का शास्त्रीय विवेचन पृ० ४४–४५

२—हुइवर पइवर पाइरम पुहवि न पाराधार।
गोरी राउ किर आवलउ गउ गढ़ गंजणहार॥

जिस उत्साह-भाव का उद्रेक हुआ है,[1] उसका आधार निश्चित ही सात्विक है और साथ ही वह लोक संगत भी है।

आश्रय-पक्ष के इस 'उत्साह' की सात्विकता परखने के लिए कवि ने आलंबन का बहुत बढ़ा चढ़ा कर वर्णन किया है। यथा—

"पउ [illegible] पातसाह उत्तर दक्खिन पूरब पच्छिम कउ अइसवार। इहा पुरुसारथ आवइ नहीं पारथा '

यदि अपने उत्साह के औचित्य पर आश्रय-पक्ष को विश्वास नहीं होता और उसकी सात्विकता में रंच-मात्र भी संशय होता तो संभव था कि वह आलंबन-पक्ष के सम्मुख झुक जाता पर ऐसी बात नहीं है। आश्रय-पक्ष का उत्साह अचल है—सत छाडि नहीं चल छांडइ नहीं दीठ न आवइ पाछार संचित न हाई इसलिए कवि की वाणी 'लोक-वाणी' बन कर धन्य धन्य की ध्वनि के साथ उसकी पीठ ठोकती है—

'धन धन हो राजा अनंगेसर बारह जिवउ जिणि इह पतिसाह संउ झांडउ निपउ।

स्पष्ट है कि कवि ने निर्लोभ ही आवरणी शैली में आश्रय-पक्ष के उत्साह के औचित्य का निरूपण करके उसका पाठक की मनोभावना के साथ तादात्म्य स्थापित कर दिया है। रस-परिपाक के लिए इससे अधिक और चाहिए भी क्या? रस-सिद्धांत के प्रवर्तकों ने इसे ही 'साधारणीकरण' की संज्ञा दी है। अस्तु।

जिस 'उत्साह' भाव की ऊपर चर्चा की गई है उसका पर्यालोचन में आद्योपांत संचार हुआ है। अचल की 'नवइ न जीवी नीव मरण हुवइ-पउ मेलिवउ' आदि उक्तियों का मूल स्रोत यही उत्साह है। इसी प्रकार अविचल वीरांगनाओं के सर-जाल में प्रविष्ट होने 'सामि सरजालि पइसिउ और बाण-वर्षा के समय स्वयं को आगे करने के निश्चय 'बहु बेसुक बरसंत—तो आगी हाइसं उठइ' के पीछे भी यही उत्साह है। इसी उत्साह से प्रेरित होकर पाल्हणसी युद्ध में सम्मिलित होने की हठ ठाने हुए हैं। वीर प्राण देने के बाद भी इसी उत्साह को जीवित रखना चाहता है। अचल के 'बड पउ सीजउ हमारउ बहर सुरिताण गोरी राजा सउं की अंग' शब्दों से यही भाव व्यक्त हुआ है।

कहने का तात्पर्य यह है कि सत्य पर आधृत इस उत्साह की जड़ें इतनी गहरी हैं कि बिना अन्याय का प्रतिकार हुए वह कभी ठण्डा नहीं हो सकता। यही कारण है कि जौहर जलाया जाता है जिसकी ज्वालाओं में अविचलनी अबलाएं सिर-सिर

१—(क) साहण साज न सार पैदल पारं न आमियइ।
दुहियइ गोरी राव-कइ मइंगल लबलु अपार॥
(ख) सर गोरी राउ कंपंउ सरइ जिहि जाति न पाति ..

करती हुई प्रविष्ट हो जाती है— सखि वरणी सिव-सिव करे पइसे पावक माहि ।' अग्नि में प्रविष्ट होते समय भी उनका उत्साह क्षीण नहीं होता—वे अपने से आगे वाली नारी को पीछे छोड़ कर स्वयं आगे आकर जौहर की ज्वाला में भस्म हो जाती हैं—

जउहर माहि जलिवाह इसइ तेज पइसइ अवस ।
पहिली थी रहि पाछली पए एकि पइसे नाह ।।

सात्विक उत्साह के सुफल स्वरूप ही आश्रय पक्ष को धीर मति प्राप्त होती है और इहलोक एवं परलोक दोनों में उसकी कीर्ति ध्रुव—स्थायी हो जाती है—
संसारि नांव आतम सरिसि अवस वेधि कीया अवस ।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जासकता है कि वचनिका में 'उत्साह' की तीव्र स्वाभाविक और प्रभावपूर्ण व्यंजना के आधार पर वीर रस का पूर्ण परिपाक हुआ है ।

वचनिका के इस विवेचन से एक विशेष बात जो सामने आती है वह यह है कि इसमें वीर-रस के स्थायी भाव उत्साह का जितना सशक्त प्रतिपादन हुआ है उतना उसके विभाव अनुभाव संचारि आदि भावों का नहीं यद्यपि इनका भी इसमें एकांत अभाव नहीं है ।

वचनिका का प्रधान रस तो वीर ही है फिर भी इसमें कुमार पाल्हणसी की अंतिम भेंट के प्रसंग में सहज ही करुण-रस का उद्रेक होपया है। यथा—

पाल्हणसी पूछविहि रहवउ अति संहया सरम्मि ।
तिणि वेला हीया भरी राइ राइ रोवण लगि ।।

इस प्रकार जब हम अचल जैसे कुछ पं वीर को आंखों में आंसू भरे हुए पाल्हणसी से भेंट करता हुआ—आंसू पु छि अंकमाल लियउ—देखते हैं तो हमारा मन करुणा से अभिभूत हो जाता है । संभवतः ऐसे ही किसी करुण प्रसंग को देख कर भवभूति की वाणी इन शब्दों में फूट पड़ी होगी— अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम् ।'

अचलदास खीची री वचनिका

भाषा शास्त्रीय अध्ययन

१ ध्वनि विचार

(क) प्रयुक्त ध्वनियां

स्वर—अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ अं अः

व्यंजन—क ख ग घ ङ

च छ ज झ

ट ठ ड ढ ण

त थ द ध न

प फ ब भ म

य र ल व

स ह (ड़)

(ख) ध्वनि-विकार :

स्वर विकार

अ = इ किवाड़ (कपाट) मदिमत (मदमत्त) छतिम (छत्तम)

अ = उ मु हुआ (महर्ष)

अ = ए ड़ेह (ड़ेर)

इ = ए बेमतिया (बिमती) कनेट्ठ (कनिष्ठ)

इ = अ परवार (परिवार)

ई = ए बेणा (बीणा)

उ = अ आवप (आयुष)

ख = इ कापुरिस (कापुरुष)

औ = ई रीव (रौप)

ऐ = अइ बइर (बैर)

औ = अउ कवतिग (कौतुक)

ऋ = उ पुठि (पृष्ठ)

ऋ = र पंचामत (पंचामृत) बड़ (वृद्ध)

व्यंजन-विकार :

क = य कउतिग (कौतुक) मुगत (मुक्त) सपति (शक्ति)
क = य दसियर (दिनकर)
ख = य कवियण (कविजन)
ट = त टूटा (त्रुटित)
ट = ड कोटि (कोटि)
ठ = थ भारथी (भारती)
त = प बीपइ
त्त = प आवम्पउ
थ = ह पुहवि
द = व उवहि (उदधि)
र्द = ड कवडि (कपर्द)
प = ह कहिर (कपिर) कुलवहू (कुलवधू) उवहि (उदधि)
म = ख कवियण (कविजन) सुरताण (सुलतान)
प = य मंडप (मांडव)
प्प = पप्प अपसरा (अप्सरा)
भ = ह सुहड (सुभट)
म = व सीव (सीम) सावंत (सामंत)
य = व कुव (युद्ध) वज-तव (वज्र-तुंड) ज्याग (यज्ञ) पुपति (युक्ति)
य = व आवम (आयुष)
य = ह रामाइण (रामायण) राह (राय) माह (माय)
व = व पर्व (पर्व)
श = स प्रसेस (प्रशेष) सालिग्राम (शालिग्राम) अस्मेध (अश्वमेध)
ष = ख पुरुखारथ (पुरुषपार्थ)
विप = ईत

२ रूप-विचार

जाति

नर जाति से नारी जाति बनाने के लिए निम्नलिखित प्रत्ययों का प्रयोग हुआ है—

ई—१ सोलस बरस की राणी बताणी ....।
२ कोटे कलवाही कहइ।

इणो—१ मैणा पुस्तक पाखिणी ।
२ मन मेहड़ी मेहड़ उबक तू वरिणी दिन दोइ ।

वचन

दोनों वचनों में शब्द-रूप एक समान ही पाये जाते हैं । केवल जिन शब्दों के अन्त में अउ (जो आगे चल कर औ तथा आ हो गया) है उनका बहुवचन बनाने में उह (ओ औ) का आ कर दिया गया है । उदाहरण—खांडउ (खांडा), सारीअ (सारिका,) वडउ (वृक्ष) ।

कारक

(१) अविकारी तथा (२) विकारी । अविकारी रूप शब्द का मूल रूप होता है विकारी रूप अविकारी रूप के आगे प्रत्यय जोड़ कर बनाया जाता है । अविकारी भूतकालिक सकर्मक क्रिया का कर्ता नहीं हो सकता । विकारी भूत-कालिक सकर्मक क्रिया का कर्ता होता है तथा अन्यान्य कारकों के परसर्ग भी उसी के आगे जोड़े जाते हैं ।

१ कर्ता कारक

(१) वाण्ड कहइ
(२) मेवड़ अन्तर काइ
(३) चतुरंग बलु चढि धात्या

२. कर्म कारक

(१) हस्ती मेषि चालयउ
(२) खांडउ पखालयउ
(३) अनेक राइ मवर्णित करि मेलता
वड पद बीजड

३ करण कारक

(१) एतरइ हि कु कारणइ
चांदइ मजपटान पूटे

संप्रदान कारक ——

कउण-हुइ वई कउण (किसको = किस पर)
सब रहइं मेटर सइ (सबको = सब से)
अवलेस पर प्रति कहइ सइ
कबीर न जीवइ चलक-हुइ

अपादान कारक :

१ हमारउ नइर सुखिराण मोरी राजा-सउं कीम्यउ ।

२ मइ-हूंता गइ तमहूंटी

३ कवण का माथा-संइ खिसी

संबन्ध कारक

रउ—१ मालवारउ चकरवती

२ राइ कटक-बंध-रउ मारंभ पारंभ

३ सूरउ राजउ अमल रउ सउंदालम्म, सिकार ।

रा— १ मालवा रा कटक बंध ।

केरा—१ कइवा कारणि कविन कोपि कु वालम-केरा ।

का— १ राजा नरसिंघदास-का कुंवर ।

अधिकरण कारक :

इ—१ मेरा पुस्तक धारणी कासमीर कंदरि वसंति ।

२ साइ सारवा मनि संवरि ।

३ एकइ वनि वसंतउ ।

४ एकइ दिहाडइ ।

५ अहंकारि राजा दूसरउ ।

मांहि–१ दूध मांहि साकर पडइ

संबोधन कारक :

१ बाप हो बाप ।

२ राजा अचलेसर कहइ सइ भाई हो ।

३ सो नहि हो ठाकुरे ।

४ है । माइ ।

सर्वनाम :

हउं—हउं ऊभासि आपणा नेवे पक्ष तिणि तानि ।

महारउ—सोलिकी सूरज वंसी सुचिस्व त्रिस महारउ पता ।

मूझ—मूझ तणउ साथी मुलइ ।

मंइ—मंइ कीयउ तेहवउ मरण ।

अम्हारइ—अम्हारइ मनि न हुइ सइ ।

आपण—आपण दुरंग ग थप्पियो ।

आपणा—आपणा देवर जेठ भरतार।
आप—आप कारिजि आप सवारयी।
आपणाउ—आपणाउ हीज क्रियउ किउ आवइ।
हमारउ—हमारउ बहर मुरिताण गोरी राज मंडउ कीयउ।
हम—ए तउ न जीपइ हम हइ।
हमारी—सबरी रही हमारी नांहि।
{तुम्हारी—मुर छू मुर राइ बार तुम्हारि बीग हुवि।
{तुहारइ—यह स तुहारइ आवणइ।
{तम्हे—यह उडवात तम्हे नही छूइ।
{तम्हइ—तम्हइ कोइ मानउ आपणमन नांहि पहिन।
तउं—तउं तउं कापुयर कापुरिस।
वारइ—वारइ क्रियउ।
वारउ—वारउ जियउ जिणि पतिसा सउं लांडउ लियउ।
कउण—हिन्दू राजा कउण कउण।
कुण—एतरी बात कुण आम नई।
कउण का नाम तइं लिखी।
जिकइ—जिकइ मनि पतिसाह की रीसवसी।
जिणि—वारउ जियउ जिणि पतिसाहा सउं लांडउ लियउ।
जिहि—गोरी कमउं तरइ जिहि जाति न पांति।

सख्यावाचक विशेषण

[क] गणना वाचक

अेक—अेक अवल मर कमइ लिखवास।
मरण तउ सइ अेक वार।
अेकई—बउरासी दुग लिया वा अेकइ दिहाडइ।
अेकणि—अेकणि दिसि आया असुर।
अेकि—अेकि मारया अेकि मुहा।
इक—हाथा कीधी इक।
तीनि—तीनि पक्ष ऊभरां।
चउ—चउ दिसि पड़ी।

मध्यम पुरुष बहुवचन—

छउ (बहुवचन)

१ तमे कोइ मानउ आपण मन माहि अहित ।

उत्तम पुरुष बहुवचन—

मो (बहु वचन)

१ मूवा-की पैज मरां ।

२ माइ-बाप बीसरां ।

३ तीनि पक्ष ऊधरां ।

४ अभिमान करण सउ करां ।

भूतकाल के प्रत्यय

एकवचन नर जाति

इयउ—

१ पु बलियउ मर धनधनी ।

२ क्रियउ पयाणु पुरु ।

३ रिण जेति मेल्हि धास्यउ ।

४ दम् लाभियउ वाणवरणउ ।

इउ—

१ मन्त्रनिउ मनमांहि ।

यउ—

रिण जेति मेल्हि धास्यउ ।

बहुवचन नरजाति—

इया (बहुवचन)

१ अनेक राइ मनवलित करि मेलिया ।

२ कडिया अंडकालिम कटक ।

३ मलिया (मलिया) सकम नरेस ।

४ हुन हुलिया हेकाणवइ पडपति गमे नमेह ।

आ—

१ धास्या स्वामि समाणनी ।

२ उलियाणा आगी हुवा ।

३ प्रेकाणि दिसि आया अनुर ।

नारी जाति

ई (एकवचन)

१ कवणसह विकइ मनि पतिसाह की रीन बसी ।

२ कवण की माई विवाणी ।

३ स्वामी कवण मायी मूवण ।

भूतकाल के विशेष रूप :

१ वाति न पड पीहाण ।

२ कवण हुई वई कठड ।

३ कवण की माई विवाणी ।

४ पातसाह ए कन्क-वंध अचलेस्वर ऊपर लूटा ।

५ वाट का खड-खंडण लूटा ।

६ ढ्ढ-का पाणी लूटा ।

भविष्यकाल के प्रत्यय

सी (दोनों वचनों में)

एक व०—हउं उजालसी माज वेरै पस विण वाति ।

बहु व०—उपम मइपड एड वलि वीरजी वलाखिसी ।

सां } उत्तम हउं कोसी सो कंत ।
स्यां } पुरुष बहु व० हव हुवस्यां हरपुर विसा ।

पूर्वकालिक कृदन्त कृदन्त

प्रत्यय इ'

१ मरण देखि परिवाह ।

२ वंसपति को विहंड-मड नही तेथी मवखडि तेवि ।

हेतु कृदन्त

वा—

करिवा

वर्तमान कृदन्त

१ देखती फिरै सो

२ वंदर कुमवड

क्रिया विशेषण कृदन्त

प्रत्यय—

तइ—१ सांचल तइ सूर।

तां—१ बात कहूंतां वार लागे।

संज्ञित प्रत्यय

हार—१ मारा मारंभ पारंभ भागि वइ मैयण हार।

२ राइ हुव राखणहार।

३ भांजणहार।

ईक—१ मिलइ राव मरणीक।

२ कमि पालट करणीक।

एरउ (स्वार्थिक प्रत्यय)

१ मोल आणवी सु हुवेरा।

२ पतिसाह हुवा आला आविनेरा।

३ मन भनेरा।

क्रिया विशेषण।

काल वाचक

१ तिवरइ—तिवरइ तऊ बात कहूंता वार लागइ।

२ तइं—तइं पतिसाह तणेइ।

३ तव—मति महवउ तव आप।

४ इवइ—इवइ वउं कीजइ।

५ तिखइ—तिखइ वेला तिणइ तामि।

६ तव—तव जाइ मे दूहर वइ वनलहर दी सिवालागा।

स्थान वाचक

१ जहं—जहं संचर तहं जाइ।

२ तहं—जहं संचर तहं जाइ।

३ जव-तव—जव-तव विउ मसाण कारक की वाडी।

४ आगी—उगिमाणा आगी हुआ।

५ ऊपरि—हस्ती की पजवटा सी ऊपरि लाल लाल सइ मनक घर सांवरा।

६ आसपास—ज्यउं आणउ स्यउं मरउ आसपास।

७ सामउ—कउण की माई विचाणी सू सामउ रहउ आणीपाणी।

८ उहां—भीरउ उहां राणा मोकलसि पासि मनउ।

रीति वाचक :

१ इम-व्यासम अचलेसरि अग्यां सेन विन्हे इम तमिनी ।

२. इसउ-इसउ कीजइ ।

३ इसिपरि-इसिपरि त्यां सहतां सहतां ।

४ इसीपरि-इसीपरि त्यां खंडहाजम पौरी राजा

अव्यय क्रिया विशेषण

१ काइ—केवइ अंतर काइ ।

२ नइ—तीइ कमी नइ नइइ ।

संयोजक

अर—

१ सोनउ अर रुपाल ।

२ अेक अवल अर कमई सिवदास ।

तउ—

१ ये बडी बडाई तउ आपण पाइइ पूजइ न इइ ।

२ तुंबिउ इइ मुखाइ तउ मुकवि ।

नइ—

पूरब नइ पच्छम तणा ।

समास

वचनिका में कुछ समास भी प्रयुक्त हुए हैं। साधारणतया ये दो-दो शब्दों के हैं। यथा—

गीत-हूम जइ-किवाड़ आली-मोली रांणी-रवतांणी वन-कण धन-कण गज-दल हर-पुर, घर-आकास सति-जवणी आदि ।

द्विरुक्त-शब्द

कउण कउण, वम वम्यां वणु वणु उमउं उमउं जिउरा जिउरा छांइ छांइ तिउरा तिउरा पुकन घट घरि-घरि, नगर नगर, पंपि पंपि, पउलि पउलि, बाप बाप मलां मलां जलउ जलउ, मुकाम मुकाम भाहि भाहि, मारतां मारतां बार बार, राइ राइ वेगा वेगी, सहस सहस मइ मइ, अणी अणी, आरंभ आरंभ, अरजो अरजी आदि ।

शब्द कोश

वचनिका में संस्कृत के तत्सम शब्द तद्भव शब्द विदेशी (अरबी फ़ारसी) शब्द और डिंगल के अपने शब्द प्रयुक्त हुए हैं। विदेशी शब्द अपेक्षाकृत बहुत ही कम हैं। यथा—

१ तत्सम शब्द

अवला, अवर अंतर अंकमाल अभिमान आरंभ आवास अहित, अति अमुर, अनेक अदक, अदास कलक, कमल कला, कालि, कांता, कुमुद खंड-खंड खेद गुण चिंता चतुरंग जीवन जाति तेज तिलक, दल देवता, धीर, धन पुर, प्रवाह प्रौढा पंचामृत,प्रजा, परिवार मनोन्मत्त मद-मलित मरण-मंत्र मूल महासती लोक वस्त्र विग्रह, विधि सुकल, सुवास सभा सहित सकल सहस सबल सारंग आदि।

२ तद्भव शब्द

कवतिग, कवड़ी कायम किउ कोडि कापरिस, कोडस चकरवटी चिहुर जंबित जम्म जैठ, दुचितु, दम्मिर, नेडा, पुरसारथ प्रब, पूत पुरब प्रथिमि भावइ मोस मुपत, रीस, वहिर, सामि बरस, वैरुग, भरिम सामंत सरनि, सकति संप्राप्तो सग, सस्त्री, सबल, संबरि, आवम्बउ अचलेसर अमेस ओलि (अवलि) आवरत उजासत उरसंबइ आदि।

३ डिंगल के कुछ विशेष शब्द

अवहट्ठइ, आवट्टइ, अमोमि अवसरे उपरांवस उलिगाला संवइ रवेह गम्त्वण वम्हव मंबलहार मेल ठाठरि थारीसी बू बलियउ धम बयी नवइ, मलि मस्हपि विवाणी हीवा, रमजी, गहिवइ, घोडा करपी वहुडहिवा दवइ आदि।

४ विदेशी शब्द

आलम आला आलमसाह, पतिसाह गोरी वहरि (वहर) मुकाम उम्मत (उम्र) साह, विकार आदि।

२

वचनिका

राठोड़ रतनसिंघजी री महेसदासोत री

जिडिया जगारी कही

कृति और कृतिकार

'लिखिया बया द्वारा रचित 'वचनिका राठौड़ रतनसिंह महेसदासोत री' राजस्थानी साहित्य भण्डार की स्थायी निधि है। राजस्थान और मालवा में यह इतनी लोकप्रिय रही है कि यदि इसे सदियों का जातीय काव्य कहा जाय तो अनुचित न होगा। प्रत्येक सुरुचि संपन्न और साहित्य रसिक चारण के पास इसकी हस्तलिखित प्रति अवश्यमेव रहती थी। यही कारण है कि राजस्थानी भाषा के मर्मज्ञ विद्वान तेस्सीतोरी को यत्किंचित प्रयास से ही जोधपुर, बीकानेर, जयपुर और मालवा के पुस्तक संग्रहालयों से इसकी ३० हस्तलिखित प्रतियां प्राप्त हो गई थी जिनमें से कतिपय प्रतियों का लिपिकाल वचनिका में वर्णित धरमत युद्ध की घटना से १०–४० वर्ष पश्चात का है। डा० तेस्सीतोरी ने प्राप्त प्रतियों में से १३ प्रामाणिक प्रतियों के आधार पर 'वचनिका' का संपादन करके उसे आज से लगभग ४२ वर्ष पूर्व रॉयल एशियाटिक सोसायटी से प्रकाशित करवाई थी। हमने इसे ही प्रामाणिक मानकर अपने अध्ययन का आधार बनाया है।

जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह और मुगल-सम्राट शाहजहां के दो विद्रोही राजकुमारों-औरंगजेब एवं-मुराद-के बीच लड़े गये धरमत (उज्जैन) के युद्ध की पृष्ठ भूमि पर रचित वचनिका' एक ऐतिहासिक काव्य है जिसमें रतलाम नरेश रत्नसिंह के त्याग और बलिदान को केन्द्र मान कर क्षात्र-धर्म और आर्य-गौरव की प्रतिष्ठा की गई है।

यद्यपि यह ग्रंथ 'वचनिका' नाम से ही प्रसिद्ध रहा है, तथापि कवि ने इसे एक दूसरा नाम 'रासी रतन' भी दिया है। यथा—

ओहि मरदे लिखियो बणी रासी रतन रसाल।

महाराजा रत्नसिंह के जीवन-चरित्र से संबन्धित 'रतन रासी' नामक पिंगल में रचित एक कृति और भी है, जिसका रचयिता सीहू शाखा का चारण कवि कु भकरण है। कु भकरण और लिखिया बया दोनों समकालीन थे और रतनसिंह के पुत्र रायसिंह के आश्रय में रहे थे। ऐसी स्थिति में दोनों रचनाओं का नाम एक होने से उनकी पहचान में कुछ भ्रम होने की संभावना थी। संभवतः इसी कारण आलोच्य रचना 'वचनिका' नाम से प्रसिद्ध रही है। 'वचनिका' नामकरण होने का एक कारण यह भी है कि शिवदास कृत 'अचलदास खीची री वचनिका' की भांति इसमें भी वचनिका' शैली का अनुकरण किया गया है। अस्तु।

खिड़िया जगा का जीवन-वृत्त

वचनिका' के 'जोड़ि भणै जगौ' से यह तो स्वतः सिद्ध है कि इस का रचयिता खिड़िया जगा है। पर इसके अतिरिक्त रचियता के जीवन-वृत्त के विषय में वचनिका' में कुछ नहीं मिलता। डा० तैसीतोरी को चारणों के भाट राव से जगा का जो वंश-वृक्ष मिला था, वह इस प्रकार है—

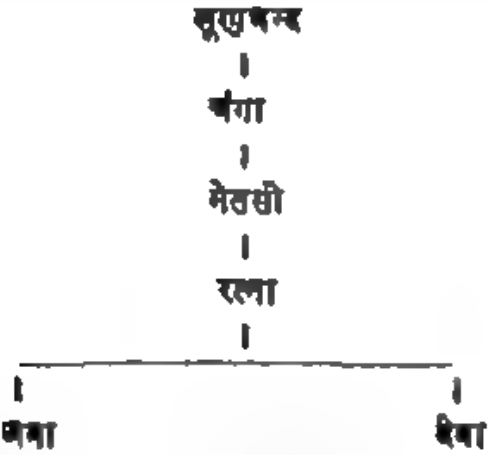

प्राप्त जानकारी के अनुसार डा० तैसीतोरी ने बताया है कि पहले जगा महाराजा जसवंतसिंह का आश्रित था। उसके पूर्वजों को सांकड़ा नामक ग्राम 'शासन' से मिला था। मुगल सम्राट शाहजहां ने जब जसवंतसिंह को औरंगजेब और मुराद का दमन करने के लिए भेजी गई शाही सेना का सेनापति नियुक्त किया तब जगा भी उसके साथ उज्जैन के युद्ध-क्षेत्र में गया था। किन्तु जब राजपूत युद्ध के लिए सन्नद्ध होकर क्षत्रिय परंपरानुसार केसरिया बाना धारण करने लगे तब जगा को युद्ध में सम्मिलित होने की आज्ञा नहीं दी गई। उसे रत्नसिंह के ज्येष्ठ पुत्र रामसिंह के संरक्षण में रह कर काव्य रचना द्वारा इस युद्ध की घटना को चिर-स्मरणीय बनाने को कहा गया।

कवि (चारण) को युद्ध से विरत रख कर काव्य-रचना द्वारा युद्ध की घटना को अमर बनाये रखने की इस किंवदंती का आधार शिवदास विरचित अचलदास खीची री वचनिका में सम्बन्ध में प्रचलित इसी अभिप्राय की किंवदंती ही प्रतीत होती है।

जगा के महाराजा जसवंतसिंह के आश्रित होने के बारे में डा० तैसीतोरी ने आपत्ति उठाई है जो उचित है। क्योंकि बीकानेर के दरबार पंचायन में सुरक्षित एक हस्तलिखित ग्रन्थ में अन्यान्य चारणी गीतों के साथ रत्नसिंह की प्रशंसा में लिखित ३ कवित्त मिले हैं, जिनका रचयिता खिड़िया जगा है। संभवतः ये कवित्त जगा ने रत्नसिंह के जीवित काल में रचे थे।

यदि जगा को जसवंतसिंह का आश्रित मान भी लिया जाय तो यह संभव नहीं कि उनके जीवित रहते हुए वह रत्नसिंह का आश्रय स्वीकार करने और उसका यश गान

उस युद्ध को लेकर करे जिसमें उसके स्वामी जसवन्तसिंह को रणक्षेत्र से विमुख होना पड़ा था। यह चारणी भावनाओं के विरुद्ध भी है। अन्तः-साक्ष्य के आधार पर भी देखें तो प्रकट होता है कि सम्पूर्ण रचना में कवि रत्नसिंह के प्रति हार्दिक स्वामी भक्ति से ओतप्रोत है। एक बात और भी है-अब तक खिड़िया जगा के नाम से रचित जो भी रचनाएं मिली हैं उनमें रत्नसिंह का ही गुण-गान किया गया है। यदि कवि महाराजा जसवन्तसिंह का आश्रित होता तो वह जोधपुर के राजवंश के बारे में कुछ न कुछ काव्यरचना अवश्य करता परन्तु ऐसी एक भी रचना प्राप्त नहीं है। इन तथ्यों के आधार पर यही मानना न्याय-संगत है कि जगा जसवन्तसिंह का आश्रित न होकर रत्नसिंह का ही आश्रित था।

कवि खिड़िया जगा जसवंतसिंह का आश्रित होने का भ्रम फैलने का कारण यही प्रतीत होता है कि जसवंतसिंह की सेना में खिड़िया जगा नामक एक अन्य योद्धा था। कवि जगा ने भी अपनी वचनिका में इसका उल्लेख किया है। जगा—

दल डोहे दरियाउ, हैवे वहि हड़वाल रो।
जोड़े रिणमाहां जयी रहियो राउ॥

रामसिंह भी अपने पिता रत्नसिंह की भांति कवियों का आश्रय दाता था। 'राव रासो' का रचयिता कु मकरस भी उसके आश्रय में रहता था। जगा ने अपनी वचनिका' की रचना रामसिंह के दरबार में रह कर ही की थी। किंवदंती के अनुसार रामसिंह ने जगा को 'आसनिया' और 'डेरी' नामक दो गांव पुरस्कार स्वरूप दिये थे, जिन पर संवत् १९६० तक उसके वंशजों का अधिकार होना बताया जाता है।

इससे अधिक जगा के जीवन-चरित्र के बारे में कुछ ज्ञात नहीं है। यह माना जाता है कि उसकी मृत्यु रामसीन में ही हुई और वहीं राज-वंश की श्मशान भूमि 'सिवबाग' में उसकी अंत्येष्टि की गयी थी।

वचनिका का रचनाकाल—

कवि ने अपनी कृति के रचना-काल के विषय में कुछ नहीं कहा है। पर परमत के युद्ध का समय इस प्रकार दिया है—

नव वैशाखह तिथि नवमि पनरोत्तरे वरसिंह।
वारि सुकर लड़िया विहूर हिंदू तुरक वहसिंह॥

अर्थात् 'सं० १७१५ : वि० : में वैशाख के कृष्ण पक्ष की नवमी तिथि शुक्रवार को हिन्दू और मुसलमान लड़कारते हुए लड़े।

इस प्रकार वचनिका के अनुसार परमत के युद्ध की तिथि विक्रम संवत १७१५ वै वैशाख कृष्ण ९ शुक्रवार निश्चित होती है। अरबी तवारीखों में भी युद्ध का दिन

खिड़िया जगा का जीवन-वृत्त

वचनिका के जोड़ि भणी जगी से यह तो स्वतः सिद्ध है कि इस का रचयिता खिड़िया जगा है। पर इसके अतिरिक्त रचयिता के जीवन-वृत्त के विषय में 'वचनिका' में कुछ नहीं मिलता। डा० तेसीतोरी को चारणों के भाट राव से जगा का जो वंश-वृक्ष मिला था वह इस प्रकार है—

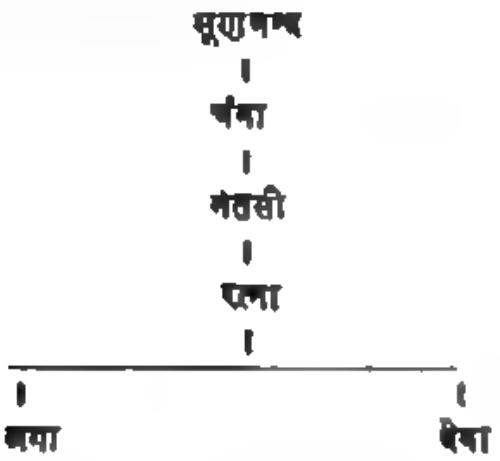

प्राप्त जानकारी के अनुसार डा० तेसीतोरी ने बताया है कि पहले जगा महाराजा जसवंतसिंह का आश्रित था। उसके पूर्वजों को सांकड़ा नामक ग्राम शासन से मिला था। मुगल सम्राट शाहजहां ने जब जसवंतसिंह को औरंगजेब और मुराद का दमन करने के लिए भेजी गई शाही सेना का सेनापति नियुक्त किया तब जगा भी उसके साथ उज्जैन के युद्ध-क्षेत्र में गया था। किन्तु जब राजपूत युद्ध के लिए सन्नद्ध होकर क्षत्रिय परंपरानुसार केसरिया बाना धारण करने लगे तब जगा को युद्ध में सम्मिलित होने की आज्ञा नहीं दी गई। उसे रत्नसिंह के ज्येष्ठ पुत्र रामसिंह के संरक्षण में रह कर काव्य रचना द्वारा इस युद्ध की घटना को चिर-स्मरणीय बनाने को कहा गया।

कवि (चारण) को युद्ध से विरत रख कर काव्य-रचना द्वारा युद्ध की घटना को अमर बनाये रखने की इस किंवदंती का आधार शिवदास विरचित अचलदास खीची री वचनिका के सम्बन्ध में प्रचलित इसी अभिप्राय की किंवदंती ही प्रतीत होती है।

जगा के महाराजा जसवंतसिंह के आश्रित होने के बारे में डा० तेसीतोरी ने आपत्ति उठाई है जो उचित है। क्योंकि बीकानेर के दरबार पुस्तकालय में सुरक्षित एक हस्तलिखित ग्रन्थ में अन्यान्य चारणी कवियों के साथ रत्नसिंह की प्रशंसा में लिखित ३ कवित्त मिले हैं जिनका रचयिता खिड़िया जगा है। संभवतः ये कवित्त जगा ने रत्नसिंह के जीवन काल में रचे थे।

यदि जगा को जसवंतसिंह का आश्रित मान भी लिया जाय तो यह संभव नहीं कि उनके जीवित रहते हुए वह रत्नसिंह का आश्रय स्वीकार करने और उसका यश गान

उस युद्ध को लेकर करे जिसमें उसके स्वामी जसवन्तसिंह को रणक्षेत्र से विमुख होना पड़ा था। यह चारणी मान्यताओं के विरुद्ध भी है। अन्तःसाक्ष्य के आधार पर भी ऐसे तो प्रकट होता है कि सम्पूर्ण रचना में कवि रत्नसिंह के प्रति हार्दिक स्वामी भक्ति से ओतप्रोत है। एक बात और भी है-अब तक सिंहिया जया के नाम से रचित जो भी रचनाएं मिली हैं उनमें रत्नसिंह का ही मुख्य-नाम किया गया है। यदि कवि महाराजा जसवन्तसिंह का आश्रित होता तो वह जोधपुर के राजवंश के बारे में कुछ न कुछ काव्यरचना अवश्य करता, परन्तु ऐसी एक भी रचना प्राप्त नहीं है। इन तथ्यों के आधार पर यही भावना न्याय-संगत है कि जया जसवन्तसिंह का आश्रित न होकर रत्नसिंह का ही आश्रित था।

कवि सिंहिया जया जसवन्तसिंह का आश्रित होने का भ्रम फैलने का कारण यही प्रतीत होता है कि जसवंतसिंह की सेना में सिंहिया जया नामक एक अश्व घोड़ा था। कवि जया ने भी अपनी वचनिका में इसका उल्लेख किया है। यथा—

> बस कोहे दरियाव, हैवे वहि हरमाल रौ।
> घोड़े रिणवाला जयौ, रहियौ राउ॥

रत्नसिंह भी अपने पिता रतनसिंह की भांति कवियों का आश्रय दाता था। रत्न रासो का रचयिता कु भकरण भी उसके आश्रय में रहता था। जया ने अपनी 'वचनिका' की रचना रत्नसिंह के दरबार में रह कर ही की थी। किंवदंती के अनुसार रत्नसिंह ने जया को 'आसलिया' और 'डेरी' नामक दो गांव पुरस्कार स्वरूप दिये थे, जिन पर संवत् १९६० तक उसके वंशजों का अधिकार होना बताया जाता है।

इससे अधिक जया के जीवन-चरित्र के बारे में कुछ ज्ञात नहीं है। यह माना जाता है कि उसकी मृत्यु रणवास में ही हुई और वहीं राज-वंश की श्मशान भूमि लिखमाद में उसकी अंत्येष्टि की गयी थी।

वचनिका का रचनाकाल—

कवि ने अपनी कृति के रचना-काल के विषय में कुछ नहीं कहा है। पर धरमत के युद्ध का समय इस प्रकार दिया है—

> बस वैसाखह तिथि नवमि पंचरोतरै वरसि।
> वारि सुकर वढिया विहूर हिंदू तुरक वहसि॥

अर्थात् 'सं० १७१५ (वि०) में वैशाख के कृष्ण पक्ष की नवमी तिथि शुक्रवार को हिन्दू और मुसलमान लड़ाकों हुए बढ़े।'

इस प्रकार वचनिका के अनुसार धरमत के युद्ध की तिथि विक्रम संवत १७१५ के वैशाख कृष्ण ९ शुक्रवार निश्चित होती है। अरबी तवारीखों में भी युद्ध का दिन

शुक्रवार २२ रजब १०६८ हिजरी दिया गया है। यों यह युद्ध शुक्रवार १६ अप्रेल सन् १६५८ ई० को हुआ था। कविराजा श्यामलदास ने अपने वृहद् इतिहास ग्रंथ 'वीर विनोद' में इस युद्ध की तिथि वैशाख कृष्ण ८ वि० सं० १७१५ तदनुसार ता० २२ रजब सन् १०६८ हिजरी दी है।[1] स्व० डा० यदुनाथ सरकार ने भी इस युद्ध की तारीख १५ अप्रेल सन् १६५८ मानी है जो एफेमेरीज के अनुसार वि० सं० १७१५ वैशाख कृष्ण ८ शुक्रवार तथा २२ रजब सन् १०६८ हिजरी के दिन पड़ती है।[2] परन्तु इन सब गणनाओं में फारसी तवारीखों में दिये गये 'शुक्रवार' की अपेक्षा ही हुई है। एफेमेरीज की उल्लेख की ठीक तरह जांच करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिजरी तारीख २२ रजब वस्तुतः शुक्रवार १५ अप्रैल १६५८ ई० को संध्या समय ही प्रारंभ होकर दूसरे दिन शुक्रवार, १६ अप्रैल, १६५८ ई० को दिन भर रही। अतः खिड़िया जगा द्वारा दी गई तिथि और वार सर्वथा सही है।[3]

यद्यपि इसका कहीं भी कोई उल्लेख नहीं मिलता कि इस युद्ध के कितने समय बाद खिड़िया जगा ने प्रालोच्य वचनिका की रचना की, परन्तु अनुमान यही है कि युद्ध के पश्चात् शीघ्र ही उसने यह ग्रंथ लिख डाला होगा।

१—कविराजा श्यामलदास—वीर विनोद पृ० ३२४।

२—डॉ० यदुनाथ सरकार—हिस्ट्री ऑफ् औरंगजेब-भाग १—२ अध्याय १५ पृ० ३४८—३०।

३—डॉ० रघुवीर सिंह—वचनिका रा० रतनसिंघ महेसदासोतरी—(गोपीराम शर्मा एवं डॉ० रघुवीरसिंह द्वारा संपादित) पृ० ७८—८१

साहित्यिक आलोचना

अवमिका की कथा

ग्रन्थ का प्रारंभ गणपति-वन्दना विष्णु, शिव शक्ति, एवं सिद्धिदाती सरस्वती के स्मरण से-मंगलाचरण और देव-स्तुति की परिपाटी के निर्वाह के साथ हुआ है। रत्नसिंह की प्रशस्ति एवं उसके वीर-वंश के संक्षिप्त परिचय के अन्तर्गत उसके पराक्रमी पिता महेशदास की बलख-विजय कालौर प्राप्ति आदि वीर कृत्यों का संकेत में बखान करने के पश्चात मूल कथा प्रारंभ करती गई है।

दिल्ली का बादशाह बीमार क्या हुआ मानों जीते जी ही मर गया। वह दिन रात रंग-प्रासादों में रहता था। दरबार (दीवान) लगाने तक की उसमें क्षमता नहीं रही। देश में उसकी मृत्यु की अफवाह फैल गई। जिसके शाहजादे अपने अपने क्षेत्रों में शक्ति जमा कर सरजोर हो गये। पूर्व में शुजा गुजरात में मुराद और दक्षिण में औरंगजेब सूबेदारी शासक बन बैठे। यह देख कर शाहजहां और दाराशिकोह इन पर कुपित हुए। शाहजहां ने अपने दो विश्वस्त सहयोगी हिन्दू राजा जयसिंह और जसवंतसिंह को बुलवाया और उन्हें हस्ति-हाथी-घोड़े आदि देकर विद्रोही राजकुमारों का दमन करने के लिए भेजते हुए कहा 'पतिसाही थां ऊपरां'। जयसिंह अपने पौत्र सहित शुजा से लड़ने के लिए पूर्व में भेजा गया और अकेला जसवंतसिंह औरंगजेब और मुराद से लड़ने के लिए नियुक्त किये गये। जसवंतसिंह ने शाही उमरावों और राठौड़ कछवाहा सिसोदिया, हाड़ा गौड़, यादव झाला आदि सत्तीसों वंशों के वीर योद्धाओं को साथ लेकर के आगरा से प्रस्थान किया। उनके साथ तोपों बन्दूकों और गोलों से लैस हाथियों घोड़ों एवं ऊंटों की विशाल वाहिनी थी-शाही सेना आकाश के मध्य लहरा रही थी। द्रुत गति प्रस्थान करती हुई यह शाही सेना ऐसी प्रतीत होरही थी मानो मेनवती नदी पहाड़ से पानी लेकर निकल रही हो। काले ऊंटों की सघन और दीर्घ सैन्य-पंक्तियां ऐसी थी मानो भादव मास के बादल घिर आए हों। इस विराट वाहिनी के प्रयाण से आकाश फटा जारहा था समुद्र उद्वेलित था पर्वत टूक-टूक होकर पृथ्वी से लग गये नदी नालों का पानी सूख गया और घोड़ों की टापों से उड़ी धूल से आकाश धू धला होगया। इस प्रकार जसवंतसिंह सबल-बल विद्रोही सहजादों से लोहा लेने के लिए उज्जैन-धाम पहुंच गया।

जसवंतसिंह ने अपने बांधव रत्नसिंह को बुलवाया वह हस्तिसार और कालौरनां किवाड़' रत्नसिंह तुरन्त शाही सेना में आ मिला।

उधर दोनों भाई-औरंगजेब और मुराद भी आकर अड़ गए। नगाड़े गड़गड़ा उठे। दोनों सेनाओं ने कूच किया। पौरुष प्रेरित योद्धा हुंकार कर घोड़ों पर चढ़े। प्रतिद्वन्द्वी सेना का वेग ऐसा था मानो सौ सौ नदियां बल जोर के साथ समुद्र से मिलने चली हों। तुर्क जाति के विकट वीर शस्त्रास्त्र धारण कर चढ़ दौड़े। गुजरात और दक्षिण की संयुक्त सेना रौद्र रूप धारण कर उज्जैन की ओर उन्मुख हुई। अश्व गज और पैदल सेना के यूथ ऐसे प्रतीत होरहे थे जैसे इन्द्र ने वर्षा की झड़ी लगाने हेतु बादलों के समूह सजाए हों। दोनों यवन राजकुमार रत्न-जटित हेम-कवच धारण कर गर्व से भ्रू कों पर बल देते हुए एवं चंवर डुलवाते हुए मेघोपम हाथियों पर सवार हुए। काहल अश्वान्त भेरी नफेरी और तुरही का नाद हुआ। गज चमकने लगे और घोड़ों की हींस हुई। चमचमाते हुए भैजों के साथ सेनाएं ध्वजाएं फहराने लगी। यवन-अश्वों की टापें पाताल में प्रतिध्वनित होने लगी। आकाश में रज छायई मानो आकाश के मध्य एक अन्य आकाश और बन गया। लोक-माय कंपित हो उठा सारी धरा धक्क सी रह गई मानों सातों समुद्र पृथ्वी पर उलट आये हों। इस प्रकार शाहजादों की सेना भी उज्जैन आ पहुंची। अब दोनों ओर की सेनाएं आमने-सामने आकर डट गई।

औरंगजेब और मुराद ने जसवंतसिंह को एक फरमान लिख कर कहा कि— राजा। हमारा रास्ता मत रोको। युद्ध न ठानो। हमें दिल्ली जाने दो। हम बादशाह के चरण स्पर्श कर वापस लौट जाएंगे।' परन्तु जसवंतसिंह ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया और कहा मुझे तुम्हें रोकने के लिए भेजा है फिर मैं तुम्हें कैसे जाने दूं ? तदुपरांत उसने अपने प्रमुख सामन्तों को परामर्श के लिए एकत्र किया। सामंतों ने कहा आप जितना चतुर कौन है ? फिर भी आप राठौड़ रत्नसिंह से परामर्श ले लें वह युद्ध आदि में निपुण है।

जसवंतसिंह ने रत्नसिंह से परामर्श कर व्यूह रचना की और अपने विभिन्न योद्धाओं को यथोचित स्थानों पर नियोजित कर दिया। इस प्रकार अपनी सेना को तीन भागों-हरावल चन्दील और गोल-में विभक्त कर जसवन्तसिंह स्वयं भी गोल में खड़े होगए और बोले— ये दोनों भाई-शाहजादे-बहुत लेकर हमें ललकारने चले हैं और उत्साह से आकाश को स्पर्श कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में हम भी रामावतार जैसा युद्ध रचेंगे और चन्द्रमा सी धवल कीर्ति के भागी बनेंगे। जसवन्तसिंह का यह आह्वान पाकर रत्नसिंह ने निवेदन किया 'हे कुल-दीपक युद्ध का समस्त भार मुझे सौंप कर आप जोधपुर चले जाइये और अपने वंश की रक्षा कीजिये। आपका युद्ध से विरत होना नीति विरुद्ध नहीं है क्योंकि दुर्योधन भी युद्ध-क्षेत्र से हट गया था और श्रीकृष्ण भी कालयवन के सम्मुख पलायन कर गए थे। यदि मेरे प्राणोत्सर्ग से ही राज्य की रक्षा होगई तो राठौड़ों को कोई बुरा नहीं कहेगा। औरंगजेब से कहलवा दीजिये कि वह द्वितीय महाभारत के लिए प्रस्तुत होजाए।

परन्तु जसवन्तसिंह युद्ध से विरत नहीं हुए । उन्होंने रत्नसिंह को मरण-दूत दे दिया । रत्नसिंह अपने शिविर में लौट आये । उन्होंने जप-तप दान-पुण्य इष्ट देवों का पूजन आदि करवाया और अपने योद्धाओं में मिष्टान्न वितरित करवा कर उन्हें उज्जैन जैसे पवित्र तीर्थ-स्थान में धारा-स्नान कर स्वामी-धर्म शान-तेज और आर्यमर्यादा की रक्षा के लिए प्रेरित किया । सामन्तों ने सर्व सम्मत हो इस आह्वान का स्वागत किया । कविजन सामन्तों को उत्साहित करने लगे और भाट एवं जागीड़िये विरुदावली गाने लगे ।

मारवाड़ के वीर घनों में उत्साह का तूफान आया बड़ा रण बजा और वे विकट युद्ध के लिये आतुर हो उठे । सिपहसालार बोल दिये गये । दूसरे दिन औरंगजेब ने कुरान का और जसवंतसिंह ने वेदों का पाठ करवा कर दोनों ने परस्पर युद्ध के लिए चुनौती भेज दी ।

भीषण प्रलयकारी युद्ध हुआ । इलल्लाह-इल्लाह और हरि-हरि के घोष के साथ दोनों पक्ष एक दूसरे का संहार करने लगे । युद्ध की विभीषिका को देखने के लिए सुर-असुर आ पहुंचे । डाकनियां मंगल गाना गाने लगी । तीन प्रहर तक युद्ध चलता रहा । राजपूत अपूर्व वीरता से लड़े पर औरंगजेब की विजय निश्चित सी होगई । चौथे प्रहर में भी युद्ध का अन्त समीप न देख कर राठौड़ योद्धा रिणमल अपने साथियों को संबोधित कर बोला 'युद्ध शतरंज का खेल है । इसमें राजा के सुरक्षित रहने पर ही बाजी रहती है । औरंगजेब पातशाह हमारे समक्ष है । किसी प्रकार महाराज जसवंतसिंह को युद्ध से बाहर निकालो । निदान जसवंतसिंह युद्ध से बाहर निकाल दिये गये और उनके स्थान पर रत्नसिंह ने सेनापतित्व का स्थान ग्रहण किया । भारत (युद्ध) की लाज अब रत्नसिंह की भुजाओं पर आ टिकी । वह मस्तक पर मौर बांध कर और भुजाओं में मार्ग-वीरत्व को धारण कर शत्रु-सेना पर पिल पड़ा । उस समय वह ऐसा लगता था मानो महाभारत के युद्ध में कर्ण अथवा लंका के युद्ध में कुम्भकरण हो । युद्ध ने और भी विकराल रूप धारण कर लिया वीर योद्धा तलवारों से डंका राग सैलने लगे और अप्सराएं वीरों का वरण करने लगी । अनेक सामन्त योद्धा वीर गति को प्राप्त हुए विपक्षी भी क्रुद्ध हुए । अंत में रत्नसिंह भी शत्रु संहार करता हुआ धराशायी हुआ । उसके ३०० घाव एवं २६ भाले लगे और तलवार के ८ घाव आए ।

रत्नसिंह के धराशायी होते ही औरंगजेब की विजय दुन्दुभि बज उठी । रत्नसिंह के साथी वीरों ने उसके छिन्न-भिन्न अंगों को एकत्र करके बालों और घासों के लच्छों से चिता तैयार की और उसकी नर-देह को भस्म करदी । रत्नसिंह को अमरत्व प्राप्त हुआ । ब्रह्मा विष्णु महेश इत्यादि देवता उसके सम्मुख उपस्थित हुए और उसे वैकुण्ठ चलने की प्रार्थना की । रत्नसिंह ने देवताओं से अपने वीर-गति प्राप्त साथियों

उधर दोनों भाई-औरंगजेब और मुराद-भी आकर मिल गए। नगाड़े गड़गड़ा उठे। दोनों सेनाओं ने कूच किया। पौरुष प्रेरित घोड़ा हुड़बड़ा कर घोड़ों पर चढ़े। प्रतिद्वन्द्वी सेना का वेग ऐसा था मानो नौ सौ नदियां जल जोर के साथ समुद्र से मिलने चली हों। तुर्क जाति के विकट वीर सस्त्रास्त्र धारण कर चढ़ दौड़े। गुजरात और दक्षिण की संयुक्त सेना रौद्र रूप धारण कर उज्जैन की ओर उन्मुख हुई। अश्व गज और पैदल सेना के चट्टु ऐसे प्रतीत होरहे थे जैसे इन्द्र ने वर्षा की झड़ी लगाने हेतु बादलों के समूह सजाए हों। दोनों यवन राजकुमार रत्न-जटित हेम-कवच धारण कर गर्व से मूंछों पर बल देते हुए एवं चंवर डुलवाते हुए मेघोपम हाथियों पर सवार हुए। काहल नगाड़ा भेरी नफेरी और तुरही का नाद हुआ। गज गरजने लगे और घोड़ों की हींस हुई। चमचमाते हुए भालों के साथ सेनाएं ध्वजाएं फहराने लगी। यवन-अश्वों की टापें पाताल में प्रतिध्वनित होने लगी। आकाश में रज छागई मानो आकाश के मध्य एक अन्य आकाश और बन गया। शेष-नाग कंपित हो उठा सारी धरा धड़क सी रह गई मानों सातों समुद्र पृथ्वी पर उलट आये हों। इस प्रकार शाहजादों की सेना भी उज्जैन आ पहुंची। अब दोनों ओर की सेनाएं आमने-सामने आकर डट गईं।

औरंगजेब और मुराद ने जसवंतसिंह को एक फरमान लिख कर कहा कि—राजा। हमारा रास्ता मत रोको। युद्ध न करो। हमें दिल्ली जाने दो। हम बादशाह के चरण-स्पर्श कर वापस लौट जाएंगे।' परन्तु जसवंतसिंह ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया और कहा मुझे तुम्हें रोकने के लिए भेजा है फिर मैं तुम्हें कैसे जाने दूं ?' तदुपरांत उसने अपने प्रमुख सामन्तों को परामर्श के लिए एकत्र किया। सामंतों ने कहा आप जितना चतुर कौन है ? फिर भी आप राठौड़ रत्नसिंह से परामर्श ले लें वह युद्ध आदि में निपुण है।'

जसवंतसिंह ने रत्नसिंह से परामर्श कर व्यूह रचना की और अपने विभिन्न योद्धाओं को यथोचित स्थानों पर नियोजित कर दिया। इस प्रकार अपनी सेना को तीन भागों-हरावल चन्दौल और गोल-में विभक्त कर जसवन्तसिंह स्वयं भी गोल में खड़े होगए और बोले— ये दोनों भाई-शाहजादे-बल लेकर हमें ललकारने लगे हैं और उत्साह से आकाश को स्पर्श कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में हम भी रामायण जैसा युद्ध रचेंगे और चन्द्रमा सी धवल कीर्ति के भागी बनेंगे। जसवन्तसिंह का यह आह्वान पाकर रत्नसिंह ने निवेदन किया हे कुल-दीपक युद्ध का समस्त भार मुझे सौंप कर आप जोधपुर चले जाइये और अपने वंश की रक्षा कीजिये। आपका युद्ध से विरत होना नीति विरुद्ध नहीं है क्योंकि दुर्योधन भी युद्ध-क्षेत्र से छूट गया था और श्रीकृष्ण भी कालयवन के सम्मुख पलायन कर गए थे। यदि मेरे प्राणोत्सर्ग से ही राज्य की रक्षा होवे तो राठौड़ों को कोई दुख नहीं रहेगा। औरंगजेब से कहलवा दीजिये कि वह द्वितीय महाभारत के लिए प्रस्तुत होजाए।

लिए भी वैकुण्ठ वास की व्यवस्था करने का अनुरोध करते हुए १२ दिन तक प्रतीक्षा करने को कहा जिससे कि उसकी रानियां भी सती होकर उसकी सहगामिनी हो सकें। विष्णु ने यह अनुरोध स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् वैकुण्ठनाथ ने विश्वकर्मा को रत्नपुरी नामक एक नगरी का निर्माण करने की आज्ञा दी। नगरी का निर्माण देवी-चमत्कार से तत्काल होगया। फिर विष्णु भगवान ने एक सभा का आयोजन कर रत्नसिंह को अपने पास बिठाया देवताओं ने उसके चंवर ढुलाए एवं सूर्य और चन्द्रमा उसके खवास बने। रंभा, उर्वशी आदि अप्सराओं का हाव भाव-पूर्ण नृत्य हुआ और छह रागों बत्तीस रागिनियों एवं सप्त-स्वरों में संगीत होने लगा।

इसी समय रत्नसिंह की मृत्यु का समाचार उसकी रानियों को मिला। उसकी चार रानियां-प्रतिरूपदे सवनसुखदे सुखरूपदे और सुखरूपदे और तीन उपपत्नियां सती होने को प्रस्तुत हुई। उन्होंने गंगा-स्नान कर वस्त्राभूषण धारण कर सोलह शृंगार किये, परंपरानुसार ताम्बूल कपूर आदि का सेवन किया और दान पुण्य करवा कर घोड़ों पर सवार हो सरोवर की पाल पर आ पहुंची। वहां हर-गौरी की पूजा कर जन्म जन्मांतर तक रत्नसिंह को ही भर्तार रूप में प्राप्त करने की कामना की। फिर पृथ्वी आकाश पवन जल सूर्य और चन्द्रमा को प्रणाम किया और आरोपी की परिक्रमा करती हुई अपने परिजनों को अंतिम आशीष देकर हरि-हरि की ध्वनि के साथ अग्नि में प्रविष्ट हो गई।

अपनी काया को होम कर सतियां विमान द्वारा स्वर्ग को पहुंची। देवांगनाओं ने पुष्प वर्षा कर उनका स्वागत किया और उन्हें रत्नसिंह के पास पहुंचा दिया। देवों ने आकाशवाणी द्वारा रत्नसिंह को बधाई दी। इस प्रकार उसका यश अमर हो गया।

वस्तु विन्यास

वचनिका एक खण्ड-काव्य है। खण्ड काव्य को साहित्य दर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने एक देशानुसारी कहा है। तात्पर्य यह कि उसमें एक देश या अंश का अनुसरण होता है। उसमें किसी एक महत्वपूर्ण घटना का आयोजन-किसी महान व्यक्तित्व के जीवन के एक ही पक्ष का विश्लेषण होता है। खण्ड-काव्य में पूर्ण जीवन का चित्रण होना चाहिए। उसकी कथा की क्रमबद्धता एवं सुष्ठु संघटन अनिवार्यतः अपेक्षित है।

वचनिका इन सभी विशेषताओं से युक्त है। इसमें रत्नसिंह के जीवन की एक ही घटना—युद्ध और स्वर्ग-प्राप्ति का चित्रण हुआ है। वचनिका की वस्तु अत्यंत संक्षिप्त है। प्रासंगिक वस्तु के लिए तो खण्ड-काव्य में अवकाश ही नहीं रहता है। फलतः इसमें कोई प्रासंगिक कथा नहीं है। अधिकारिक कथा में भी 'कार्यकी' की और उन्मुख

करने वाले आवश्यक प्रसंगों को लिया गया है। कथा-वस्तु सुसंगठित है। और यदि इस रत्नसिंह की स्वर्ग प्राप्ति को कथा का 'कार्य' (फल) मानें[1] तो इसमें विभिन्न अवस्थाओं का भी सुचारु निर्वाह हुआ है।

औरंगजेब और मुराद के विरुद्ध भेजी गई शाही सेना के सेनापति के रूप में उज्जैन पहुंचते ही महाराज जसवंतसिंह रत्नसिंह को युद्ध में सम्मिलित होने के लिए बुलावा भेजते हैं। रत्नसिंह तत्काल उपस्थित होता है—'हरितवार मेलो हुवो कालो दला किवार' (आरंभ)। औरंगजेब के युद्ध न आने के प्रस्ताव को ठुकरा कर जब जसवंतसिंह अपनी सेना की व्यूह-रचना कर 'बोल' में खड़े होकर रामायण जैसा युद्ध रच कर उज्ज्वल कीर्ति का भागी होने का आह्वान करते हैं तब रत्नसिंह जसवंतसिंह से निवेदन करता है कि युद्ध का सम्पूर्ण भार उसे सौंप कर वे युद्ध से विरत हो जावें रण का आयोग उसे दे दिया जाय—

> वे सोवी पतिसाह मूक वल।
> सबसी लाज मरस्य छलि सबल॥
> मरस तसी सो वी दे मोनू।
> टीलो राज वरा सल तोनू॥
> सारी वर भोजवि दिल साथा।
> रिस लाडलो मूक दे राथा॥

यही 'बल' है।

तदुपरान्त रत्नसिंह 'मरस-व्रत' धारण कर—काले मरस्य मनोरथ कीया—जप-तप दान-पुण्य, इष्टदेवों की पूजा आदि करवाता है और उज्जैन के रण-क्षेत्र में तीसरा महाभारत रचने का संकल्प करके अपने साथी योद्धाओं 'उजेण-खेत माय तीरथ लिखी रो परम सांचवी जै' का आह्वान करता हुआ युद्ध के लिए प्रस्तुत हो जाता है। इस प्रकार प्रबल सफल होता है—पर अभी बाकी है क्योंकि जसवंतसिंह युद्ध में सम्मिलित होने का अपना निश्चय दृढ़ रखते हैं (प्रापयाहा)। घमंकर युद्ध होता है जिसमें जसवंतसिंह विपक्षियों द्वारा घेर लिए जाते हैं। इस विकट घड़ी में योद्धा रिणमल अपने साथियों से कहते हैं—ठाकुरो सतरंज री बाजी बणिमो राजा राखिवे बाजी रहे।'''' छोली बाजी जसराज काजी। इस पर जसवंतसिंह युद्ध से बाहर हो जाते हैं और रत्नसिंह उनके स्थान पर सेनापतित्व ग्रहण कर युद्ध का भार अपने ऊपर लेता है। यहां आकर

१—यही उचित भी है क्योंकि कवि ने स्वयं कहा है कि मुक्ति के लिए रतन और भूमि के लिए शाहजादे परस्पर भिड़ गये—

> मयावत कवि रतन मुपति
> त्रिवी रजि आपसिया असपति॥

रत्नसिंह की वीर-गति निश्चित हो जाती है (नियताप्ति)। इसके पश्चात् रत्नसिंह अपने साथियों के साथ शत्रु संहार करता हुआ वीर-गति को प्राप्त होता है— 'साथ रौ कोट उग्गैरिए लडि पिडि रतन राज पडे' और वैकुण्ठवास ग्रहण कर अमरत्व प्राप्त करता है (फलागम)।

स्पष्ट है कि वचनिका की कथा अत्यंत संक्षिप्त है। कवि इतिहास की एक घटना को लेकर चला था और इतिहास की सीमा ही उसे मान्य थी। वचनिका में कवि का ध्येय रत्नसिंह को नायक के रूप में प्रतिष्ठित करके उसका कीर्ति-स्तवन करना था— 'बाबाणू बम्बबम्ब पुबहि राजा सबपति। परन्तु इतिहास की दृष्टि से रत्नसिंह का कोई महत्व नहीं है। जिस युद्ध की घटना को आधार बना कर कवि अपने आश्रय दाता रत्नसिंह का नायकत्व प्रतिपादित करने चला है उसका सेनापतित्व साहबखां द्वारा महाराजा जसवन्तसिंह को सौंपा गया था, जिसमें रत्नसिंह की स्थिति उनके अधीन अन्यान्य सामंतों के समान ही थी। साथ ही ऐतिहासिक सत्य के निर्वाह के लिए यह भी आवश्यक था कि जसवंतसिंह युद्ध की कथा में प्रमुख एवं विशिष्ट बने रहें और सम्पूर्ण कथा प्रवाह उन्हें बराबर साथ लेकर आगे बढ़े। ऐसी स्थिति में रत्नसिंह को नायक के रूप में अवतरित करके कथा-सूत्र का संयोजन करना एक जटिल और दुष्कर कार्य करना है। किन्तु कवि ने अपनी अद्भुत कल्पना-शक्ति और वर्णन कौशल से कथा-क्रम को इस प्रकार मोड़ दिया है कि रत्नसिंह शनैः शनैः कथा-क्रम में विशिष्टता ग्रहण करता हुआ स्वाभाविक रूप से नायकत्व धारण कर लेता है।

ग्रन्थ के प्रारंभ में ही कवि रत्नसिंह के पराक्रमी और तेजोमय वंश का आख्यान करने के साथ ही उसका 'रट रांण भांण रतन करतब भारथ क्रम' और 'बुध पूर्व साहिबहान भला' के रूप में परिचय देता है। उज्जैन पहुंचने पर जसवंतसिंह रत्नसिंह को बुलावा भेजते हैं—बांचब रतन बुलाविषो बसी स्वरूपिण बंग—तो यह परिचय उसके प्रति आकर्षण में बदल जाता है और जब वह अणमंद पहाड़ उज्जैन में जसवंतसिंह से आकर मिल जाता है तब तो यह आकर्षण रत्नसिंह के प्रति आत्मीयता में बदल जाता है। इस प्रकार जो रत्नसिंह अत्यन्त ही स्वाभाविक रूप से कथा-भूमि पर प्रवेश करता है। पर अभी कथा का केन्द्र जसवंतसिंह ही है। औरंगजेब द्वारा 'राठ मकरि इक तरफि रहि आगे पीछे आव के आसय का फरमान भेजने पर वही उसका उत्तर भी वां आवे मेसिहमी-कहो जांण इसू केमि'—कह कर देता है। किन्तु जब जसवंतसिंह के द्वारा युद्ध के विषय में अपने सामंतों की सम्मति चाहे जाने पर राज जितरो कुल बांणे के साथ ही यह कहा जाता है कि 'बुध बंध सभी प्रम जाणपर राजा बलि बुग्मो रतन'—तब रत्नसिंह की बारबरी में आ जाता है। जिसकी पुष्टि जसवंतसिंह के द्वारा रत्नसिंह की मन्त्रणा से व्यूह रचना किये जाने से हो जाती है—

बैठा वे आलोच बहादर
सू पतिव हो सूमण समहर।

किन्तु एकाएक ही महाराज जसवंतसिंह जब 'बोल' में खड़े होकर 'रिण रामाइण जिसो रचावां। लड़ें मरो चंदनाम मिलावां' का आह्वान करते हैं तो फिर उसका व्यक्तित्व उभर उठता है पर दूसरे ही क्षण बात बदल जाती है। रत्नसिंह मरण का सूचा मांगता हुआ—'मरण तणो तो बो है मोनूं'—जसवंतसिंह से युद्ध का संपूर्ण भार उसे सौंप कर—'रिण आवतो युद्ध रे राजा' युद्ध में विरत हो जाने के लिए निवेदन करता है और शौर्यमय व को युद्ध की पुर्नती भेजने के लिए कहता है। यहां वह पाठक को आश्चर्य चकित करता हुआ कथा—नेपथ्य बन जाता है। उसकी स्थिति उस समय और भी नुरुह हो जाती है जब जसवंतसिंह भी उसे स्वर्ग के लिए सीख दे देते हैं—

'मतो रिठाइ बिने राव नाह
नीच रतन कीध अम साह।

यहां रत्नसिंह का व्यक्तित्व संपूर्ण कथा पर छा जाता है। वह मरण-व्रत धारण कर दान-पुण्य जप-तप करवाता है और युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाता है। अपने वीर साथियों को एकत्र कर वह अहम तोलता हुआ खण्ड-खण्ड होकर भी 'मन्नी रो काम सबी रो बरब' पालन करने का आह्वान करता है जिसका सभी वीर हृत संकल्प हो स्वीकार करते हैं। यहां तक आते-आते जसवंतसिंह पृष्ठ-भूमि में पड़ जाता है। आगे चल कर पांच-छह बार जसवंतसिंह का नाम आता है, वह भी कथा-सूत्र की एकता और प्रबंध-निर्वाह की दृष्टि से। तदुपरांत शत्रु-पक्ष की विजय निश्चित हो जाने पर जसवंतसिंह अपने साथी सामंतों के साथ पर युद्ध से पलायन कर जाते हैं। फलतः रत्नसिंह युद्ध का सम्पूर्ण भार ग्रहण कर'—'भारथ री भर भारतसामीर भलिया पुर्ण बाबरत्न धारण कर लेता है। यहां आकर कवि की उत्तेजित वाणी 'मन्न-मन्न' की ध्वनि के साथ जसवंतसिंह की तुलना में रत्नसिंह को ऊंचा उठा देती है—

किधो उबेणी कमधजे मन जीवनसिंह मांहि।
जांहि मुरडे बलियो मने रतन मांहि राहि॥

आगे चल कर कवि ने रतन के बल, और पराक्रम का विशद और हृदयग्राही वर्णन करते हुए उसकी वीर-गति को चित्रित किया है। अंत में रत्नसिंह को 'कम' के रूप में वैकुण्ठ-वास (अमरत्व) प्राप्त होता है और उसका यश चिर-स्थायी हो जाता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कवि ने जसवंतसिंह को कथा में प्रधानता देते हुए भी रत्नसिंह को नायक के रूप में प्रतिष्ठित करने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है। विशेषता यह है कि रत्नसिंह को नायकत्व प्रदान करके भी उसने जसवंतसिंह की चारित्रिक गरिमा को अक्षुण्ण बनाये रखा है।

वस्तु-विन्यास में भी जग्गा ने सर्वत्र औचित्य और संगति का निर्वाह किया है और उसमें आद्यांत तारतम्य और एकरूपता बनाए रखने का प्रयास किया है। इतना सब कुछ करने के उपरान्त भी उसने कहीं भी ऐतिहासिक सत्य की हत्या नहीं की है। कवि का यह कौशल प्रशंसनीय है। संपूर्ण चारणी-साहित्य में जग्गा की वचनिका सी सुष्ठु कथा-कला युक्त और इतिहास-सम्मत रचना शायद ही कोई मिलेगी।

वर्णन

वचनिका एक वर्णन प्रधान रचना है। कथा स्वल्प है विभिन्न वर्णनों द्वारा उसका कलेवर बढ़ाया गया है। इसमें निम्नलिखित वर्णन आए हैं—

१ रत्नसिंह का वंश-वर्णन।
२ शाही सेना के प्रस्थान का वर्णन।
३ औरंगजेब की सेना का वर्णन।
४ हाथियों का वर्णन।
५ घोड़ों का वर्णन।
६ क्षत्रिय वीरों का वर्णन।
७ मुसलों का वर्णन।
८ ऋतु वर्णन।
९. युद्ध वर्णन।
१० विश्वकर्मा द्वारा निर्मित रत्नपुरी (नगर) का वर्णन।

इतने अधिक वर्णनों से काव्य के कथा-प्रवाह में विराम आया है और कथा की एकसूत्रता भी भंग हुई है। परन्तु हमें यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि कवि के पास कहने के लिए कोई स्थूल कथा नहीं है। वह कथा तत्व के रूप में केवल युद्ध की एक घटना और अपने चरित्र नायक के शौर्य एवं बलिदान की बात को लेकर चला है। ऐसी स्थिति में इस रचना में यदि युद्ध और युद्ध सम्बन्धी अन्य ग्य वर्णन आए हों तो कोई आश्चर्य नहीं। और फिर कवि के सम्मुख दीर्घ काल से चली आ रही वीर-काव्य परम्परा का आदर्श भी तो था जिसमें वर्णन ही प्रधान थे।

वचनिका में वर्णन प्रायः प्रसंग और भाव के अनुरूप होकर आए हैं। इनसे काव्य-सौंदर्य में वृद्धि हुई है और कवि की प्रतिभा का उत्कर्ष भी प्रकट हुआ है। फिर भी हाथी घोड़ों सरदारों (क्षत्रियों) मुसलों आदि के वर्णन अखरने वाले हैं, इनमें कथानुबन्ध में शिथिलता आई है। कवि चाहता तो इनसे बच भी सकता था, संभवतः युद्ध के अनुकूल वातावरण निर्माण की दृष्टि से ही उसने इन वर्णनों का आयोजन किया है। वस्तुतः ये वर्णन युद्ध का वातावरण निर्मित करने में नितांत ही उपयोगी सिद्ध हुए हैं और इनसे वीर-रस के परिपाक में भी सहायता मिली है।

कवि नाम-परिगणन शैली से भी नहीं बच सका है, किन्तु अन्यान्य वीर काव्यों की भांति इसमें कोरी इतिवृत्तात्मकता नहीं है। कवि ने नाम के परिगणन के साथ संवादों और वीर-भावों की अवतारणा करके वर्णनों में एक प्रकार की नाटकीय त्वरा का समावेश कर दिया है जिससे वे सरस बन गये हैं। वीरोक्तियों से वीर-रस का 'उत्साह' भाव परिपुष्ट हुआ है।

कवि वर्णन-पटु है। उसके वर्णनों में अतिशयोक्तियां हैं फिर भी वे जीवन से एक दम परे नहीं है। उनमें प्रभावित करने की अद्भुत क्षमता है। वर्णनों में कवि ने सादृश्य मूलक अलंकारों का ही वर्णन किया है। उपमानों की योजनाओं में न केवल सादृश्य अपितु साधर्म्य का ध्यान रखा गया है। वे रूप गुण और क्रिया का तीव्र अनुभव कराने में समर्थ हैं ही साथ ही भावानुकूल भी। ऐसे वर्णनों से पाठक एकदम साधारणीकृत हो जाता है।

अवसर न होते हुए भी युद्ध-वाहिनी का वर्णन करते हुए षट्-ऋतु वर्णन और नव-रस वर्णन के लिए अवसर निकाल कर परंपरा-पालन करने का प्रयास किया है। ऋतु-वर्णन का प्रारंभ ग्रीष्म ऋतु से हुआ है। कवि ने नितांत ही प्रसादगुण वर्णनिका शैली में षट्-ऋतुओं एवं नव रसों का संक्षेप में वर्णन किया है जो भाषा और शैली दोनों की दृष्टि से राजस्थानी भाषा के बल का सुन्दरतम उदाहरण है। पर यह वर्णन केवल उपमानों के आधार पर खड़ा किया गया है। फलतः यह परंपरा पुष्ट ही कहा जायगा। सब होने पर भी कवि ने इसे अनावश्यक विस्तार न देकर कथा-क्रम को भंग होने से बचा लिया है।

युद्ध में वीर गति प्राप्त करके रत्नसिंह अमरत्व प्राप्त करता है। वैकुण्ठनाथ उसके स्वागतार्थ स्वर्ग में 'रत्नपुर' नामक नगर का निर्माण करवाते हैं। कवि ने इस नगर का विशद वर्णन किया है। यदि स्थूल दृष्टि से देखा जाय तो यह वर्णन निरर्थक और असंगत प्रतीत होगा। किन्तु वास्तविकता यह है कि कवि ने इसके द्वारा अपनी कथा को एक नया मोड़ देकर अपने चरित-नायक की लौकिक पराजय को अलौकिक विजय के रूप में चित्रित किया है। चित्रित होकर भी रत्नसिंह अमरत्व प्राप्त करता है और स्वर्ग के देवता तक उसका सम्मान करते हैं यही दिखाना कवि को अभीष्ट है, और इसलिए उसने इस नगर वर्णन का आयोजन किया है।

सती-वर्णन के अन्तर्गत रानियों के नख शिख का वर्णन करते समय कवि रीति कालीन भूमि पर उतर आया है। वीरता के प्रसंग में शृंगार का आयोजन देख कर पाठक चकित-विस्मित हो जाता है। किन्तु यहां भी कवि पकड़ में नहीं आता। वीर भूमि राजस्थान मालवा की ललनाएं रणांगण में वीर-गति को प्राप्त अपने पति के साथ सती होने के अवसर को एक पर्व मान कर सोलह शृंगार से सज्जित हो अग्नि

स्थान करती आई है। इसी परंपरा के अनुसार कवि ने सती प्रसंग में शृंगार की अवतारणा की है।

इस प्रकार वचनिका के प्राय, सभी वर्णन सप्रसंग और कथा-क्रम से किसी न किसी प्रकार सम्बद्ध है जो वर्णन कथा-विन्यास से तनिक परे है वह भी अपने काव्य सौंदर्य के कारण इतना मार्मिक है कि पाठक उसमें अभिभूत होकर तन्मय हो जाता है—ज्योंही मंत्र आता है त्यों ही कथा-क्रम फिर जुड़ जाता है और कथा विकासोन्मुख हो जाती है।

वीर-काव्यों में प्रकृति प्राय: उपेक्षित रही है, उसका जो कुछ भी थोड़ा चित्रण मिलता है वह अप्रस्तुत रूप में है और परंपरा युक्त भी। वचनिका में भी यही प्रकृति लक्षित होती है। कवि युद्ध और युद्ध सम्बन्धी वर्णनों में इतना तल्लीन है कि उसे प्रकृति-निरीक्षण के लिए अवकाश ही नहीं। फलतः वचनिका में कहीं भी स्वतंत्र रूप से प्रकृति चित्रण नहीं हुआ है। फिर भी कवि ने इस-अनुप मेघ घटा बिजली वर्षा धारा नदी-प्रवाह आकाश पर्वत आदि प्रकृति के प्रस्तुत उपमानों द्वारा कहीं-कहीं प्रकृति के सुन्दर दृश्य खण्ड प्रस्तुत किए हैं। इस दृष्टि से ऋतु-वर्णन अत्यंत ही सुन्दर बन पड़ा है।

चरित्र चित्रण

वचनिका में जीवन की विविधता का चित्रण न होकर एक विशिष्ट घटना का वर्णन हुआ है। यह घटना युद्ध की है जिसमें कर्म की गतिशीलता और भावना की तीव्रता तो है किन्तु अन्तर्द्वन्द्व या मनोविश्लेषण की प्रक्रिया नहीं—इसमें वैशिष्ट्य है वैविध्य नहीं।

इसमें पात्र उतने ही हैं जितने कि किसी सेना में सामंत सरदार हो सकते हैं। प्रत्येक पात्र के विषय में कवि ने कुछ न कुछ बताया है कुछ पात्र स्वयं भी बोले हैं। इतना होने पर भी पाठक की दृष्टि रत्नसिंह महाराजा जसवंतसिंह, औरंगजेब व आदि की चार पात्रों पर टिकती है। ग्रन्थ के शीर्षक और वस्तु विवेचन से सिद्ध है कि इसका नायक रत्नसिंह है। आख्यान संपूर्ण घटना चक्र रत्नसिंह को केन्द्र मान कर अग्रसर हुआ है। उसके सहयोगियों की वीरोक्तियां और उनके कर्म आदर्श एवं त्याग-भावना की अभिव्यक्ति सभी उसके चरित्रोत्कर्ष का साधन बने हैं। वस्तुत: देखा जाय तो कवि ने किसी एक व्यक्ति विशेष का चारित्रीकरण करने का प्रयास नहीं किया है अपितु रत्नसिंह को आदर्श के रूप में प्रतिष्ठित करके समस्त क्षत्रिय जाति के चरित्र को सामूहिक रूप से प्रस्तुत करने का यत्न किया है। संभवतः इस रचना की महती लोकप्रियता का एक कारण यह भी है।

रत्नसिंह

रत्नसिंह 'चंपनिका' का नायक है। वह राजकुलोत्पन्न रावण और कर्ण के समान उद्भट वीर, मंत्र-मंत्रक, सर्व-समर्थ, विपक्ष तारणहार सर्वांग सुन्दर पुरुष है।[1] वह दुर्योधन के समान उदात्त-चरित्र, शत्रुओं के लिए अर्जुन के बाण के समान विनाश कारी, भीम के समान बली, वट-भाया प्रवीण, गो-ब्राह्मण रक्षक एवं तेजस्वी सीसोदिया भूपाल है।[2] इस प्रकार वह वीरोदात्त-नायक के सभी गुणों से विभूषित है।

जसवंतसिंह जब युद्ध में सम्मिलित होने के लिए बुलावा भेजते हैं। वह 'काली दसा विचार' तन्मय उपस्थित होता है। जसवंतसिंह अपने साथी सामन्तों को युद्ध के लिए आह्वान करते हैं तो रत्नसिंह पूरे युद्ध का भार स्वयं झेलने को प्रस्तुत हो जाता है। उसका आदर्श है—

> रिण भी रहियो रज रहेसी
> नाम था नाई न दुरो कहेसी।

इसी आदर्श से प्रेरित होकर वह जसवंतसिंह से कहता है—

> 'औरंग साहि दिसी आवी इय
> हुय अरिस्यां कौरव पाण्डव जिय।

इन्हीं शब्दों के साथ वह युद्ध के लिए सक्रिय हो जाता है—

> ठाम कुहार किमो सब तोले,
> बोले चंपि त्रिसस्यां हुति बोले।
> लोयो तिक जसो धरि आयो
> आयो अंबि मो सधि आयो॥

संकल्प और कर्म की प्रबलता वीर-चरित्र की विशिष्टता मानी गई है। रत्नसिंह के चरित्र में ये दोनों गुण सम्यक्त गुण बन कर व्यक्त हुए हैं। वीर-गति प्राप्त होने पर दूसरे लोक—स्वर्ग में मिलने के विश्वास के कारण ही क्षत्रिय जाति मरण को एक पर्व के रूप में ग्रहण करती हुई आई है।[3] रत्नसिंह ने यहां अपने इसी अप्रतिहत विश्वास को हंसते हुए व्यक्त किया है।

रत्नसिंह कुशल सेना-नायक है। वह प्राणों पर खेल जाने में जितना तत्पर है उतना ही अपने साथियों को 'मरण-पाठ' पढ़ाने में निपुण भी। युद्ध उसका प्रण

१—छंद संख्या ४

२—छंद संख्या ७६—८०

३—आज घरे सासू कहे, हरक हमारो काम।
बहू बनेगा हुसरे पूत मरेगा आम॥ वीर सतसई—दूर्जनल कृत

और वीरत्व उसका बाना है। युद्ध के साथ कीर्ति का प्रश्न है, जिसके लिए वह लंका और कुरुक्षेत्र के पश्चात् उज्जैन के रण-क्षेत्र में तीसरा महायुद्ध रचने के लिए आतुर है। वह मूंछों पर हाथ धर कर तलवार तोलता हुआ अपने साथियों से कहता है—

तिण वेला दातार झूझर राजा रतन मूंछा करि चाति बोले तरवार तौले उमेणि बैठ भाग तीरथ भली रो काम जिणी रो धर्म साध बीजे लोहां रा बीह सेला रा पमंका लीजे। खांडा री खाट खडी झाट झडि उम्बाहडि लेजिजे। पाति-साहां रै खग पाउ कीजै। पुरजा-पुरजा हुइ पडीजै। तो बैकुण्ठ चडीजै।

स्वामी धर्म की रक्षा एवं आर्य-गौरव की प्रतिष्ठार्थ उज्जयनी जैसे पवित्र तीर्थ धाम में वीर-गति प्राप्त कर स्वर्गारोहण के संकल्प से निर्मित इस त्रिकोण में प्रतिष्ठित रत्न सिंह का खड्गधारी रूप उसे साक्षात वीर-रसावतार सिद्ध करने में समर्थ है। जया ने यहां परिचय के साथ ही जिस चित्र का अंकन किया है, वह चरित्रांकन की एक विशिष्ट शैली कही जा सकती है। रत्नसिंह के मुख से निकला हुआ एक-एक शब्द यहां वीरत्व का मूल विधान बन कर अभिव्यक्त हुआ है, जिसकी प्रतिध्वनि पाठक के अंतराल में आकर डूब जाती है।

वीरता बाणी की गांठ में बंध कर रहने वाला पारलौकिक गुण नहीं है अपितु वह लौकिक धर्म है। जिसका विस्तार अवसर आने पर कर्म की सीमा तक हो जाता है जिसमें तत्व-चिन्तन का प्रवेश नहीं प्राणों की परवाह नहीं एवं आवत का भय नहीं। इस स्थिति में शौर्य का बाना धैर्य की धार, साहस का बल पराक्रम का तेज भुजाओं का प्रताप और मर मिटने का उत्साह ही वीर के प्रकरण होते हैं। इस कसौटी पर कसने पर रत्नसिंह खरा और सिद्ध होता है।

तीन पहर के भयंकर युद्ध के पश्चात जब शाही सेना की पराजय निश्चित सी हो जाती है और जसवंतसिंह शत्रु-वश में घिर जाते हैं तब योद्धा रिणमल " " राजा राजी। राजा राखिये आजी रह। " ""मोही पाडो। शब्दों से क्षत्रियों को सावधान करते हैं। इन शब्दों को सुनते ही रत्नसिंह आगे आता है और बिना किसी के कहे वीरत्व से प्रेरित होकर—अपने स्वामी के प्राणों की रक्षार्थ स्वयं को जोखिम में डाल कर युद्ध का भार स्वयं ग्रहण कर लेता है— आरब रा भरमार रतनांदिर भलिया। जसवंतसिंह युद्ध से विरत हो जाते हैं और रत्नसिंह रणक्षेत्र में उनका स्थान ग्रहण कर लेता है— कुंडि मुरडे वलियो जसो रहे रतन भमि राडि। वीरत्व का उज्ज्वल और वास्तविक स्वरूप यही है और यही रत्नसिंह के चरित्र का चरमोत्कर्ष भी।

उदात्त वीर-भावना से प्रेरित होकर मस्तक पर मौर और भुजाओं में आर्य-धर्म के विरद का धारण करके रत्नसिंह शत्रु-सेना पर टूट पड़ता है।[1] वैकुण्ठवास के विचार से वह अपने शरीर से कट जाता है। यथा—

१—छंद संख्या १४८

पन बोम विधि आर बसण वैकुण्ठ विचारे ।
तजि मोह बंधि सोह सोह मोहां कुप लेवण ।
ताणि मूस उसमे जाणि पाण्डव अरजुण ।
उन्हमे रोम पीरंसि अति ग्रहे पछाडण वैवरां ।
हठो सरीर ऊपरि रतन तूठो तीस पमच्चरां ।

यहां कवि ने रत्नसिंह के आंतरिक उत्साह और तेजोमय आह्लाद को अत्यंत सजीव और सशक्त अभिव्यक्ति दी है। भाव-चित्रण की यह कला उसकी उच्च-स्पर्शी काव्य प्रतिभा की परिचायक है। अंतर का यही उत्साह वीर में पौरुष का संचार करके उसकी रोमावली में पुलक और भुजाओं में हाथियों को पछाड़ने की शक्ति भर देता है।

चित्रण की विशेषता यह है कि पहले निश्चय जन्म लेता है फिर वैकुण्ठवास का विश्वास पौरुष का संचार करता है और अंत में उस निश्चय की पूर्ति के लिए वीर सक्रिय होजाता है। चरित्र विकास की यह प्रक्रिया अपने लाघव के साथ अत्यंत सार्थक और प्रभावपूर्ण बन पड़ी है।

रत्नसिंह दुपर्ण योद्धा है। वह प्रचण्ड रूप धारण करके शत्रु-सेना का विपुल संहार करता है और अंत में स्वयं वीर-गति को प्राप्त होता है।

लाख ती कोट उजेणि मंडि
विधि खाण राजा पडे ।"

आरंभ से लेकर रत्नसिंह की मृत्यु तक कवि ने इतिहास की सीमा में रह कर रचना की है। किन्तु इसके पश्चात रत्नसिंह के स्वर्गारोहण के काल्पनिक वर्णन में देवताओं द्वारा उसका मान-सम्मान दिखा कर सूर्य-चन्द्र को उसके छत्र के रूप में चित्रित करके उसके-रत्नसिंह-की चारित्रिक उत्कृष्टता एवं वीरत्व को प्रदर्शित किया है। बीसवीं सदी का बुद्धिवादी पाठक इसे अतिशयोक्ति अथवा अतिरंजना भले ही माने किन्तु सचित संस्कारों में पले जन्मा जैसे व्यक्तियों के लिए यह चित्रण अस्वाभाविक नहीं है। इसी अवसर पर जन्मा ने अपने चरित्र-नायक में सेवक-वत्सलता का भाव दिखा कर उसे और भी उदात्तता-मण्डित कर दिया है। अन्त्योपरांत जब वैकुण्ठनाथ रत्नसिंह से वैकुण्ठ-वास करने को कहते हैं तब वह अकेला स्वर्गवास का भागी नहीं बनता अपितु वह उनसे अपने सभी वीर-गति प्राप्त साथियों के लिए वैकुण्ठ-वास की व्यवस्था करने को कहता है। यह वीर-चरित्र का चरमोत्कर्ष है जिसे जन्मा ने सुन्दर ढंग से प्रतिपादित किया है।

युद्ध की एक रसता और घटना बहुलता में जन्मा ने अपने चरित्र नायक के चरित्रोत्कर्ष को दिखाने का प्रयास किया है। उसने एक भी ऐसा स्थल अपने हाथ से नहीं जाने दिया है जहां वह रत्नसिंह की चारित्रिक विशिष्टताओं का निदर्शन कर

कता था। छोटे से छोटे अवसर और उचित का नियोजन भी उसके चरित्र-विकास का साधन बन कर हो आया है। इस विषय में 'वस्तु-विवेचन' के अन्तर्गत प्रकाश डाला जा चुका है।

महाराजा जसवंतसिंह

जसवंतसिंह का चरित्रांकन करने में कवि को एक कड़ी परीक्षा से गुजरना पड़ा है।

जसवंतसिंह जोधपुर के महाराजा है, उनके समान जानकर कोई नहीं। (राज जसवंत कुण जाणे।) वे मति भाग्य तप और तेज में हिन्दुओं के सूर्य है। (मति बखत तप-तेज सूरज हिन्दु आथो।) एवं योद्धाओं के सूर्य हैं। (तुम सहि योधा सूर जोध रा इम जपै।) एवं बादशाह शाहजहां ने उन्हें सूबा देकर हिन्दू और मुसलमान दोनों के योद्धाओं का सेनापति नियुक्त किया है। (तुम सिरदार दुर राह साह सोवी रे थप्पे।) किन्तु विधि की विडम्बना है कि उन्हें अपने सैनिकों-साथियों को रणक्षेत्र छोड़ कर युद्ध क्षेत्र से पलायित होना पड़ा है। यह उन पर साधारणतया एक कलंक माना गया है कुछ इतिहासकारों ने भी इस ओर उंगली उठाई है। ऐसी स्थिति किसी भी कवि के लिए बड़ा कठिन था कि वह जसवंतसिंह को निष्कलंक सिद्ध करके उनके चारित्रिक गौरव को अक्षुण्ण बनाये रख सकता। किन्तु चंदा ने अपनी वचनिका अद्भुत कल्पना-शक्ति और सूक्ष्म-बुद्धि कौशल से दूर तक जसवन्तसिंह के चरित्र का गौरव रखने का सफल प्रयास किया है।

जसवन्तसिंह को अकेले दो उद्भट वीर और शक्ति-सम्पन्न शहजादों से योद्धा था। साहजादां बिहुं साहुही एक जसो अण भंग। किन्तु जसवन्तसिंह विचलित नहीं हुए। औरंगजेब की ओर से 'राठि म करि इक तरफ रहि आने पीछे आव' का दबाव पाकर भी वह दृढ़ निश्चय बने रहे और यह उनके गौरवमय चरित्र का ही तेज जिससे प्रेरित होकर उन्होंने औरंगजेब से स्पष्ट शब्दों में कह दिया है जो था आडी म्हनी कहो अण हुइ मेमि।

जसवंतसिंह जन्म-जात वीर है। अपने सामने शत्रु सेना को देखकर तुरंत अपने संतों की सम्मति से व्यूह रचना कर स्वयं युद्ध के लिए मोर्चे में खड़े हो जाते हैं एवं अपने साथियों से रामायण जैसा विकट युद्ध रच कर चन्दा-नामा लिखवाने के लिए प्रस्थान करते हैं :

रिण रामाइण जिसी रचावां
लडे मरां चंद नाम लिखावां।

एक वीर सेनापति के चरित्रोत्कर्ष का इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है।

उपरोक्त आह्वान से प्रेरित होकर 'मरण का सूवा मांगता हुआ रत्नसिंह जसवंतसिंह से युद्ध में विरत होकर अमृत पान भोग के लिए निवेदन करता है और उनके युद्ध से विरत होने की बात को युक्ति-युक्त ठहराने के लिए दुर्योधन और श्री कृष्ण के समाधान के उदाहरण भी प्रस्तुत करता है, किन्तु जसवन्तसिंह अपने युद्ध के निश्चय पर अटल बने रहते हैं। जसवंतसिंह और रत्नसिंह दोनों के चारित्रिक उत्कर्ष को प्रदर्शित करने के लिए कवि ने यह सारा आयोजन किया है जो कथा-वस्तु से जितना जुड़ा हुआ है उतना ही परिस्थिति और पात्रों से भी।

जसवन्तसिंह ने औरंगजेब से वैसा ही युद्ध किया जैसा सूर्य और राहु करते हैं औरंग जसो अवाहि छूटा सूरज राहु जिम।

इस प्रकार कवि ने जसवंतसिंह को प्राणों पर खेलता हुआ चित्रित किया है। इतना ही नहीं उसने जसवंतसिंह का उच्चतम-शौर्य के प्रदर्शन हेतु औरंगजेब को देवता का अवतार तक कह दिया है। यथा—

दहव रा अवतार। जिण आगे अमराणो विमूहा अडे तिण रू तीन पोहर हाडू के महाराजा जसवंत ही लड़े।

जिस दुर्दर्ष योद्धा औरंगजेब के सामने स्वयं यमराज पीठ मोड़ देता है उससे तीन पहर तक योद्धा लेना जसवन्तसिंह के तेज पराक्रम और साहस का ही कार्य था। जसवन्तसिंह अंत तक लड़ते रहे। उन्होंने रण-क्षेत्र विवश होकर छोड़ा। वह भी तब जबकि उनके साथी-सामंतों ने उनके घोड़े की लगाम थाम कर उन्हें युद्ध-क्षेत्र से बाहर कर दिया 'वाया म्हानि जसराज वालिया'। और फिर वंश-रक्षा का प्रश्न भी तो उनके सामने था।

स्पष्ट है कि कवि ने पलायित जसवंतसिंह के चारित्रिक गौरव और साथ आदर्शों का प्राणवान्त स्वाभाविक रूप से निर्वाह किया है और बड़ी निपुणता से उनके नाम पर आने वाले दाग का मार्जन करके उनकी यश-कीर्ति की प्रतिष्ठापना करने का प्रयास किया है।

अन्य-पात्र

कवि की दृष्टि मुख्यतः उपर्युक्त दो ही पात्रों के चरित्र पर रही है। उसने प्रतिपक्ष के पात्रों का स्वतंत्र रूप से चरित्रांकन करने का प्रयास नहीं किया है। फिर भी उसने स्थान-स्थान पर उनके वीरोचित गुणों को व्यक्त किया है। युद्धों के वर्णन में उनके जातीय संस्कारों और अंतः प्रकृति का उद्घाटन हुआ है। जसवंतसिंह को देवी अवतार से औरंगजेब की कूटनीतिज्ञता की ओर भी संकेत किया गया है। इस प्रकार कवि ने प्रतिपक्ष के पात्रों को कूची के मोटे मोटे हाथ मार कर ही चित्रित किया है—सूक्ष्मता उसमें नहीं है। कवि को यह अभीष्ट भी नहीं था और न ही उसको इतना

प्रकाश था। प्रति-पक्ष के बल और पराक्रम के वर्णन से भी नायक-पक्ष के चरित्र ही विकसित और स्पष्ट हुए हैं।

युद्ध-भूमि में वीर-गति प्राप्त करने वाले अन्यान्य वीरों के गुणों का भी कवि ने वर्णन किया है जो सामूहिक रूप से क्षत्रिय जाति की चारित्रिक-महत्ता को ही व्यक्त करते हैं।

अलंकार

कवि ने रीतिकालीन अलंकारवादी युग में रचना करके भी अलंकारों का अत्यंत ही संयत और स्वाभाविक प्रयोग किया है। भाव उक्ति-चमत्कार और वक्रोक्ति विधान कवि का लक्ष्य नहीं है। उसने भावोत्कर्ष और प्रभविष्णुता को दृष्टिगत रखते हुए अलंकारों का प्रयोग किया है। जहां कवि भाव-विभोर हो गया है वहां उसने अलंकारों की योजना किए बिना ही सफल काव्य-रचना की है।

वचनिका में शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का प्रयोग हुआ है परन्तु ये अलंकार कहीं भी प्रयत्न प्रसूत नहीं जान पड़ते। कवि ने राजस्थानी चारण कवियों की प्रथा के अनुसार युद्ध व विवाह और षट-ऋतु एवं सैनिकों के दो रूपक जान बूझ कर खड़े किये हैं पर उनमें भी वैसेष बनावट और अस्वाभाविकता नहीं है। शब्दालंकारों में वृत्यानुप्रास छेकानुप्रास अन्त्यानुप्रास श्रुत्यानुप्रास बहुलता से प्रयुक्त हुए हैं—राजस्थानी वयण सगाई अलंकार का तो प्रायः सर्वत्र निर्वाह हुआ है पूरे ग्रन्थ में कठिनता से १०-२० स्थल ऐसे होंगे जहां वयण सगाई का प्रयोग नहीं हुआ हो।

कवि का डिंगल भाषा पर पूरा अधिकार है और उसका शब्द कोष विशाल है। वह प्रसंगानुकूल शब्दों का मनोवांछित प्रयोग करने में समर्थ है। यही कारण है कि वयण-सगाई जैसे शब्दालंकार का प्रचुर प्रयोग करने भी उसने भाषा के माधुर्य और स्वाभाविक प्रवाह को बनाये रखा है। लय की वर्ण-योजना और शब्द-चयनकी उत्कृष्ट कला ने वचनिका को ध्वनि-काव्य बना दिया है। अस्तु।

शब्दालंकार

१—वयणसगाई—वयण सगाई डिंगल कविता का अपना एक विशिष्ट अलंकार है। जिसका अर्थ है वर्ण द्वारा स्थापित शब्दों की सगाई या संबंध। इसमें चरण के प्रथम शब्द के आदिवर्ण का चरण के अंतिम शब्द के आदि में लाकर दोनों में सम्बन्ध स्थापित किया जाता है।[1] जैसे :—

असतकि बांधे मीर
धारे जुध हिन्दू धरम।

१—प्रो० नरोत्तमदास स्वामी—'डिंगल वचनिकी री वेलि' की प्रस्तावना पृ० ६०

मइ बहाविसि मरहुपिओ
रत्तानिर राठोड ॥

चरण सगाई या वैण-सगाई साधारणतया चरण के प्रथम और अंतिम शब्दों की ही होती है, पर कभी कभी अन्यान्य शब्दों की भी होती है। इस दृष्टि से वैण सगाई को दो भेद—(१) साधारण और (२) असाधारण माने गये हैं।

१ साधारण वैण सगाई—जिसमें चरण के प्रथम शब्द की चरण के अंतिम के साथ सगाई का संबंध हो।

२ असाधारण वैण सगाई—(क) चरण के प्रथम शब्द को चरण के उपान्त्य शब्द के साथ अथवा—
(ख) चरण के द्वितीय शब्द की चरण के अंतिम शब्द के साथ सगाई हो।[1]

जना ने अधिकतर साधारण वैण सगाई का ही प्रयोग किया है पर कहीं-कहीं असाधारण वैण सगाई के उदाहरण भी मिल जाते हैं।

उदाहरण :

साधारण—१ सुणु हाक सान्हा गजा दन्त सैले
२ विडंपा बले बुमचो केसावली
३ धुमां चाण्डा चित्त मेसा सबीरं
४ धुजां जम्म मेहा बसी सुम्बरस्वी

असाधारण—१ धरि भम्बण अवि होस
२ राय बडाला बज्जिओ

वैण सगाई कभी एक ही वर्ण द्वारा और कभी दो भिन्न वर्णों के द्वारा स्थापित की जाती है। इस दृष्टि के वैण सगाई के उत्तम मध्यम और अधम (अधिक, सम और न्यून) ये ३ भेद होते हैं—

१ उत्तम या अधिक—जब सगाई उसी वर्ण के द्वारा हो।

२–३ मध्यम या सम और अधम न्यून—जब सगाई उसी वर्ण के द्वारा न होकर दो भिन्न वर्णों के द्वारा हो।

भिन्न स्वरों और वर्ण स्वरों की वैण सगाई मध्यम तथा भिन्न व्यंजनों की सगाई अधम मानी गई है।[2]

आलोच्य रचना में उपरोक्त तीनों प्रकार की वैण सगाई मिलती है पर अधिक नहीं। कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

१—वही पृ ६ –६१

२—प्रो० मनोरमदास स्वामी—'जिनदत्त रुक्मणी रो वेली' प्रस्तावना फुटनोट पृ० ६१

उत्तम—१ हीर जडित छत्र हेम
२ किम मांसो किरणाल
३ वर सारी पडि थाक
मध्यम—१ इसा वज्र वष्टाल वस्टा अपार
२ उरं डाल सारीख चौडा अतल्ला
३ यो हरि नाम उच्चारियो
वो रहियाण अनाह ।
अधम—१ देख कुछ दिला देखाने ।
२ ठाम घर मेक टलटलि ।
३ वहे पोला सर बाण ।
४ वजां पडि नेजां वजां सीस छत्रं

वैण सगाई का स्थापित करने वाला वर्ण कभी अंतिम शब्द के आदि में आता है, कभी मध्य में और कभी अंत में। इस दृष्टि से भी वैण सगाई के तीन भेद होते हैं—

१ आदिमेल—जब वैण सगाई को स्थापित करने वाला वर्ण अंतिम शब्द के आदि में आवे।
२ मध्यमेल—जब वैण सगाई का स्थापक वर्ण अंतिम शब्द के मध्य में आवे।
३ अन्तमेल—जब वैण सगाई का स्थापक वर्ण अंतिम शब्द के अंत में आवे।

आलोच्य कृति में आदिमेल का ही अधिक प्रयोग है तथापि कहीं-कहीं मध्यमेल और अन्तमेल वाले चरण भी मिल जाते हैं।

उदाहरण :

आदिमेल—१ कटि सिंघ तिम्ब जंघा कदली
२ चित्त मित्त पवित्त मयाल चली ।
३ कण्ठ कोकिल वन्त अनार कली
४ अह नक्क अधक्क कला उजली
मध्यमेल—१ सुपह अने पतिसाह
२ हिन्दू तुरक वहस्सि
३ पडै मसडक्का पटां अणपार
४ आसि वामर विणजारै
अन्तमेल—१ अन्दर मई वधाइ
२ सती उमंगे सपरिसा
३ मु ह मागे वरि माग

वर्णन सगाई के पश्चात् दूसरा महत्वपूर्ण अर्थालंकार जिसका प्रयोग वचनिका में हुआ है, अनुप्रास है। पूरी रचना में अनुप्रास की अनोखी छटा छाई हुई है, पर कहीं भी ऐसा भान नहीं होता कि कवि ने इस योजना में कसरत की है वे सर्वत्र स्वाभाविक और प्रतिभा प्रसूत है। भाषा-अधिकार पर विचार करते समय अनुप्रास के उदाहरण दिये जा चुके हैं—पुनः और उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

अनुप्रास :

१ चण बाजित चण भाड चम अपछरां पुबरा।
२ रमे महारिण कक रम।
३ गो काली कु माथमां काल गजां मिर काल।
४ नमती मिसि मने मजर।
५ अपा ओडके अप्प छाया अपारं।
६ राज राजा राजान।

'यमक' का भी कहीं-कहीं प्रयोग हुआ है पर श्लेष के दर्शन हुए पर भी नहीं होते।

यमक

१ करण और जारव करण।
२ वीरा मिले वजीर।
३ वडडी वडी विराजियो सुर सभा विचसूर।
४ कुरुपति मुले मुखकाहण वान मुख दिमण।
५ मम महिरण मण वाण सामें चामरि चामरां।

(ख) अर्थालंकार

वचनिका में अर्थालंकार अधिक प्रयुक्त नहीं हुए हैं, [illegible] स्थिति के अनुकूल उपमा उत्प्रेक्षा रूपक [illegible] हुआ है। यथा—

उपमा

१ चतुर्वाह य रथ मनु पथ चार्मे।
२ वीर हुरी रिण चढ हुवे जिम हुरी [illegible]।
३ धावे जावे चमकण, जनी [illegible]।
४ मुंडे सिर वीस कमलपत्र ईम।
मयाकण रीछ गजां जिम भीम॥

५ करता अन रिण काम ।
जेत कलीवर जेत जिव ॥
६ ऊंदे इह किम किना ज्यू पूल धारा विधि अडि पडा ।

रूपक

१ आवा बाहिर मेम बेसि पडा मेवाडम्बर ।
२ बाहु आबिल मुख कमल ऊगा ।
३ दस सिलवार बंस वो दी बी ।
४ काल्ही रा कमल ।
५ सती रा नागेर ।
६ एक रहिम बावी ।

सांग रूपक :

१ बलाहोल रिण समन्द माहे अतिविहाज धरा ।
२ दुस्सह रवण दुखान सूरा पुरा बाम सहि ।
३ है रे चड़ दुसहणि हुई मद तोरण बबकाल ॥

विषम

१ काले अनुमाली किम्री आविचला अविघट्ट

उत्प्रेक्षा—यह कवि का सर्वाधिक प्रिय अलंकार है। अनुप्रास और वैस समाई के पश्चात् यही अलंकार है जिसका कवि ने भी खोल कर प्रयोग किया है। उत्प्रेक्षाओं की योजनाओं में जहां कवि ने परंपरागत उपमान अपनाये हैं वहीं उसने कतिपय अछूते उपमान भी ग्रहण किये हैं। यथा—

१ पिरं कंध अंधा हिरे लगिमानं ।
मरै मारि जाणे जिके अभिमानं ॥
२ मयाणंक मेवीत सोमंत मारं ।
कमे आणि आथी निसा अंधकारं ।
३ बसी जिस मे सर सेहु छबीस ।
सोहे किर बंस मिरब्बर सीस ॥
४ रक्तलत नीर जिहीं बहिरात ।
अला हुल आंखि कि भाइव आल ॥

छंद विचार

जना ने अपनी वचनिका की रचना वीर रसात्मक काव्य पद्धति का अनुकरण करते हुए की है अतः इसमें वीर रस के उपयुक्त छंदों को ही ग्रहण किया गया है। वचनिका में गद्य (वचनिका) और पद्य कुल १६६ अवतरण हैं जिनमें १२ प्रकार के

विभिन्न छंद प्रयुक्त हुए हैं। छंदों की विविधता और परिवर्तनशीलता इस कृति की विशेषता है। छंद वर्णिक भी हैं और मात्रिक भी।

(क) मात्रिक छंद

१ गाहा-छंद संख्या १,७७ ८५,

गाहा प्राकृत का सुप्रसिद्ध छंद है संस्कृत में इसका नाम आर्या है। वचनिका में प्रयुक्त 'गाहा' तीन प्रकार का है—

१ प्रथम चरण में १२ मात्रा।
द्वितीय चरण में १८ मात्रा।
तृतीय चरण में १२ मात्रा।
चतुर्थ चरण में १५ मात्रा।

छंद संख्या ७५ में उपर्युक्त-नियम का निर्वाह हुआ है।

२ प्रथम और तृतीय चरणों में १२-१२ मात्राएं।
द्वितीय और चतुर्थ चरणों में १५-१५ मात्राएं।

छंद संख्या १ में इस लक्षण का निर्वाह हुआ है।

३ प्रथम चरण में १४ मात्रा।
तृतीय चरण में १२ मात्रा।
द्वितीय और चतुर्थ चरण में १५-१५ मात्राएं।

यह छंद संख्या ८५ में प्रयुक्त हुआ है। यथा—

अवसाण मरण जब आवा
सामि कामि मंत्रिये देहा।
सोवत चित्त निश्चिन्त
प्राणीजे पुन्न रेहा है ॥८५॥

यह गाहा वस्तुतः उपर्युक्त गाहा संख्या २ ही है। [illegible] के प्रथम पद के प्रथम चरण में कभी कभी दो मात्राएं अधिक रखी जाती हैं जो [illegible] के आरंभ की सूचक होती है। गीतों की इस परिपाटी का पालन [illegible] काव्य के छंदों में भी कभी किया जाता है, जैसे कि पृथ्वीराज की [illegible] में। यहां पर भी प्रथम चरण में १४ मात्रा सम्भवतः उसी परिपाटी का [illegible] है।

२. गाहा दूमेल—छंद संख्या २५६

गाहा दूमेल में १६ १६ मात्रा के चार चरण होते हैं [illegible] प्रथम [illegible] और तृतीय एवं चतुर्थ चरण में तुक मिलाई जाती है। यथा—

दस धंस होमि विमाखे माई
आये सुरपिय साम्ही माई ।
करि बहु कोड पुहप विरखा करि
सामि मिलस चासी सखि सुन्दरि ॥२६६॥

३ गाहा चौसर—छंद संख्या ४७ ४८, २४८

'गाहा चौसर' में १६ १६ मात्राओं के चार चरण होते हैं और सभी चरणों के अंत में एक ही शब्द आता है। यथा—

दस दिसणाहि देखले ।
देख दुहं दिसा देखले ।
दुहं बाजार भंडा देखले ।
सामिस्य बजां बजां देखले । (४७)

४ विद्युन्मालिनी—छंद संख्या ५७ से ७५ तक

इसमें १६ १६ मात्राओं के चार चरण होते हैं। यह चौपाई का ही एक प्रकार है। यथा—

कमाहरी मिरवर रिण खाली
पीवलिया जावसि प्रीयाली ।
डडो जपी किया मे आये
जोडि करण जैता खल आये ॥२८॥

५. चन्द्रायणी—छंद संख्या ८२

इसके प्रत्येक चरण में ११, १० के विश्राम से २१ मात्राएं होती हैं। ११ मात्रा के अंत में जगण और १ मात्रा के अंत में रगण आता है। यथा—

पेखा वंस सुनीस दरगाह सुन्दरां
सामन्त चन्द दहिलक आरिख इन्दरा ।
जीवां रा विधि जोध विरजे ब्यारका
परिहां जोगी बन्ध कमन्ध मयाउत मारका ॥८१॥

रेखांकित शब्द 'परिहां' की रगणता चरण में नहीं होती। अंतिम चरण में ऐसे शब्द जोड़ देने की राजस्थानी के कवियों में एक परिपाटी रही है।

६ कवित्त—छंद संख्या २६,४२,५३,१३१,१३२,१४७ २४३

हिन्दी में इस छन्द का नाम छप्पय है। राजस्थानी में यह कवित्त नाम से प्रसिद्ध है। इसमें रोला तथा उल्लाला छंदों का मिश्रण होता है। यथा—

सुणि जवाब जसराज
तेहि सिताब महा भड़।
सूर बनू सारिखा
जिसा गोरखपन अखड़।
बीर बड़ा बामेत
तेहि माहुस तियारी।
पीवल कम उदिसन
जिसा मधुकर फुम्मारी।
जसराज कथा पिरथर जिसा
पूसि जमे मौटी पहां।
अम्बरां नरां असपति सू
कही जाय काहू कहां ॥२३२॥

७ दूहा—छंद संख्या ६ से १७, २५ से ३०, ४६ से ५१, ७६, ८७ से ९० १२६, १३०, १३५, १४४, २४२, २५२ से २५४, २५० ६१ से २६५।

इसमें विषम चरण मे १३ और सम चरण में ११ मात्राएं रहती हैं एवं द्वितीय और चतुर्थ चरण मे तुक मिलाई जाती है। यथा—

सम्मि धारा वा समासमा वस् सम्मिपूर।
समासमा वस् साहुले जहे जंबाला तूर ॥१३४॥

८ पद्धा दूहा—छंद संख्या २० से ४६, १३५ से १४३, १४८ से २५

यह दूहे में ११ १३ और १३ ११ के चरण होते हैं और प्रथम और चतुर्थ चरण में तुक मिलाई जाती है। यथा—

नरवर सूर निमेस मारक मचि रीती मरी
आवे आवे अपछरा अमि अरहटवहि जेम ॥१४२॥

(ख) वर्णिक छंद

वचनिका में वर्णिक छंदों का भी प्रयोग हुआ है। इनके वर्णिक छंदों में दो विशेषताएं दृष्टिगोचर होती हैं—

१ ह्रस्व 'आ' कार का प्रयोग हुआ है। यथा—

राजा करि हाक सिंघी अम रहि
मावाडत बँग परे पिण मांहि

मोतीराम छंद सं० २२६

रेखांकित वर्ण रा' और मा में ह्रस्व 'अ' का प्रयोग हुआ है।

इम अंग होमि विमाणे आई
आगे सुरनिम साम्ही आई ।
करि बहु कोड पुहप विरसा करि
सामि मिलण चाली सहि सुन्दरि ॥२४६॥

३ गाहा चौसर—छंद संख्या ४७, ४८, २४८

गाहा चौसर में १६ १६ मात्राओं के चार चरण होते हैं और सभी चरणों के अंत में एक ही शब्द आता है। यथा—

दस दिसणाणि देखमे ।
देस दुहं विसा देखमे ।
दुहं बाजार मंडा देखमे ।
दामिण बजां बजां देखमे । (४७)

४ विषमक्खरी—छंद संख्या ५७ से ७५ तक

इसमें १६ १६ मात्राओं के चार चरण होते हैं। यह चौपाई का ही एक प्रकार है। यथा—

कमाहरी विरवर रिख कमी
पीवलिया जांबलि प्रीचाली ।
छदी बनी किमा के आगे
जीवि करण जैसा छल मागे ॥५८॥

५. चन्द्राइणी—छंद संख्या ८३

इसके प्रत्येक चरण में ११ १० के विराम से २१ मात्राएं होती हैं। ११ मात्रा के अंत में जगण और १ मात्रा के अंत में रगण आता है। यथा—

मेला मंत्र अनीत दरगह उम्बरो
सामन्त चन्द दहिन्दक आरिल इन्दरा ।
जीवां रा विधि जोग विराजे ज्यारका
परिहां आंबी बन्ध कमन्ध मचाउत मारका ॥८३॥

रेखांकित शब्द 'परिहां' की गणना चरण में नहीं होती। अंतिम चरण में ऐसे शब्द जोड़ देने की राजस्थानी के कवियों में एक परिपाटी रही है।

६ कवित्त—छंद संख्या २,३,४२,४३,१३१,१३२ १४७ २४३

हिन्दी में इस छन्द का नाम 'छप्पय' है। राजस्थानी में यह 'कवित्त' नाम से प्रसिद्ध है। इसमें रोला तथा उल्लाला छंदों का मिश्रण होता है। यथा—

तुलि अवाव अवराज
तेहि सिताव महा भव ।
सूर बहू सारिखा
जिसा गोवरधन अमव ।
बीर भला बालेत
तेहि माहेस तिमारो ।
पीवल कन्न उदिरव
जिसा मधुकर कू भारो ।
अवराज कथा मिरवर जिसा
पुंजि जमे मोटां पहां ।
आवरां नरां अवपति सू
कही जाव कामू कहां ॥२६२॥

७ दूहा—छंद संख्या ६ से १७, २५ से ३०, ४६ से ५१, ७६ ८७ से ९०
१२६, १३०,१३४,१४४,२४२ २५२ से २५४,२५७ ६१ से २६५ ।

इसमें विषम चरण मे १३ और सम चरण में ११ मात्राएं रहती हैं एवं द्वितीय और चतुर्थ चरण में तुक मिलाई जाती है । यथा—

सक्ति आरा का समासमा दस सम्मिलूर ।
समासमा दस साकुने चहे बंगाला तूर ॥१३४॥

८ बड़ा दूहा—छंद संख्या ३० से ४६, १३५ से १४३, १४८ से २२४

बड़े दूहे में ११ १३ और १३ ११ के चरण होते हैं और प्रथम और चतुर्थ चरण में तुक मिलाई जाती है । यथा—

नरवर सूर विषेस भारथ मधि ऊठी मठि
आवे जावे अपछरा जपि अरहटवटि वेस ॥१४२॥

(ख) वर्णिक छंद

वचनिका में वर्णिक छंदों का भी प्रयोग हुआ है । इनके वर्णिक छंदों में दो विशेषताएं दृष्टिगोचर होती हैं—

१ ह्रस्व 'आ' कार का प्रयोग हुआ है । यथा—

राजा करि हाक जिनी राम रीहु
मामाजत लेंग परे रिण मांहि

मोतीराम छंद सं० २५६

रेखांकित वर्ण 'रा' और 'मा' में ह्रस्व 'अ' का प्रयोग हुआ है ।

३ (क) एक गुरु वर्ण के स्थान पर दो लघु वर्णों का प्रयोग। यथा—

राम विग्रण मांजणयज्ज'—यह छंद हणूमान का एक चरण है। सवरण की योजना के लिए 'विग्र' को अर्थात् दो लघु वर्णों को एक गुरु वर्ण के रूप में प्रयुक्त किया गया है।

(ख) दो लघु वर्णों के स्थान पर एक गुरु वर्ण का प्रयोग। यथा—

हिलोले पौज चढ़ाये हीक'—छंद मोतीदाम के इस चरण में रेखांकित 'ले' और 'ये' अक्षर अक्षर दो लघु वर्णों के स्थान पर प्रयुक्त हुए हैं।

१ हणूमान—छंद संख्या ४

यह सम वर्णिक छंद है जिसमें सगण जगण और जगण के क्रम से वर्ण होते हैं। इसकी गति दोमर और उडोर छंदों से मिलती है। यथा—

रवरंस भाण रतन्न
कठन्न कारण जन्न।
नरनाह वे मुख नीर
बहुवन्त ग्यान गहीर।
ससमत्थ सूर सकज्ज
पज दीग्रण मांजण मज्ज।
पितयाव तारण पक्ख
सिणवार तेरह सक्ख ॥४॥

२. मोतीदाम—छंद संख्या २२४ से २४१

इसके प्रत्येक चरण में चार जगण होते हैं। यथा—

लगां चढि धार हुमे वि विसज्ज
पडे धार हिन्दु मनेस प्रचण्ड।
रलतलि नीर जिहीं वहिरान्
जलाहलि जाणि कि भाइव जान् ॥२१५॥

३ त्रोटक—छंद संख्या ५ से ८, २३५ से २५१

इसके प्रत्येक चरण में चार सगण होते हैं। यथा—

गुरु देव सुमति समाणि गुणं
सुमपतिय जैम रतन्न जणं।
पिउ भानु महेस नरेस परं

४ भुजंगी—छंद संख्या १८ से २४

छंद प्रभाकर के अनुसार यह संस्कृत का भुजंगप्रयात छंद है जिसके प्रत्येक चरण में चार यगण रहते हैं। यथा—

> बहुती इसी पंचि बीपे बहीर
> नदी हेम बी ले चाली जाणि नीरं।
> सवारं कछू चले कूम कामा
> बहे बादसा जाणि मातंग बामा ॥२१॥

वचनिका की भाषा—शैली

वचनिका गद्य-पद्य मय शैली में रचित एक वीर रसात्मक काव्य है। कवि चारण है। उसने अपनी रचना को 'आदि अंते लिखिबो जयी रासो रसन रसाल' कह कर रासो नाम से भी अभिहित किया है फलतः इसमें चारणी-काव्य संस्कारों के साथ ही रासो-काव्य परंपराओं की विशेषताओं का भी समाहार हुआ है।

वचनिका वीर-काव्य है-वीर ही उसका अंगीरस है। अतः कवि को सुखतः वीर रसात्मक भाषा शैली का ही आश्रय ग्रहण करना पड़ा है। कवि को अपने शिर्षगत स्वामी की वीरता तेज पराक्रम और साहस का चित्रण करना ही अभीष्ट है। फलतः उसकी भाषा-शैली में ओज उत्साह, अविरल वेग आदि गुण सहज ही आ गये हैं। कवि की भावना उदात्त अन्तस वीर एवं वाणी विराट और चमत्कारी है। भावना और अभिव्यञ्जना का यह मणि-कांचन संयोग देखते ही बनता है। कवि ने चाहे गद्य को अपनी अभिव्यक्ति का साधन बनाया हो या पद्य को उसकी भाव-धारा दोनों में नैसर्गिक रूप में अप्रतिहत प्रवाहित हुई है। उसमें कहीं अवरोध नहीं-वह अभीष्ट प्रभाव सृष्टि करने में समर्थ है। वचा में गद्य और पद्य दोनों में अधिकार पूर्वक रचना करने की अपूर्व क्षमता है।

यद्यपि आलोच्य रचना को 'वचनिका' संज्ञा दी गई है किन्तु इसमें पद्य की तुलना में गद्य बहुत कम प्रयुक्त हुआ है। आशीष-वचनिका (२) वार्ता (१) और वचनिका (६) छोटे बड़े कुल १२ गद्य-खण्ड इसमें पद्यों के बीच बीच में आए हैं। इन्हें देखने से ज्ञात होता है कि अवलवास जीवी री वचनिका में प्रयुक्त राजस्थानी गद्य इस काल तक आते-आते अपने विकास की चरम सीमा को पहुँच गया था।

वचा के गद्य में जितनी आलंकारिकता है उतनी ही स्वाभाविकता और प्रवाहमयता भी। अनुप्रास जन्य नाद ध्वनि और कहीं-कहीं वेग-सपाई के योग से यह प्रवाह और भी चंचल हो उठा है। कहीं विगत के ऊबड़ खाबड़ खण्ड खण्डों में बीहड़ती हुई तो कहीं विगत की संस्कृत मिश्रित पदावली में मंथर गति से प्रवाहित वीर रस की

धारा ऐसी अद्भुत ध्वनि उत्पन्न करती है कि पाठक के मन में उत्साह और उमंग की लहर सी उठने लगती है और वह कवि की भाव-भूमि में विचरने लगता है। यही ध्वनि डिंगल-काव्य का प्राण है जो आलोच्य कृति में अपने पूरे तेज और प्रभाव के साथ विद्यमान है। यथा—

फौजां रा भाडा। काल्ही रो कलस। सती रा नालेर। साटूल रा साटूल। भगवान अमर कोलिया बहादर। बाणां मोखां सरां री मारि लोपि हाथियां रे कुम्भाथले लगलग बजावां। वज डाल पाडां र पतिसाहां रा डांसा झम्मां बाडां बग्गा बाडां लग्गा बाहस्या। एक पिपासा पीयस्यां पाहस्यां। चाचर विहण्डिस्या विहण्डाहस्यां। रिण खेत रै विसै रंविये बाणसि मतवाला ज्यं घूमतां थका हाथियां नू टला लाहस्यां।'

इन वर्णों टकार और डकार शब्दों को प्रयुक्त न करके भी यहां रचयिता ने विदग्ध शैली में योद्धाओं के आंतरिक उत्साह-उमंग की वीर भावना को खूबी के साथ व्यक्त कर दिया है। वीर के परिचय में कवि ने उपमाओं की झड़ी लगा दी है किन्तु उनसे कहीं भी भाव अशक्त नहीं हुआ है। वे कोरे चमत्कार से परे सबल संस्कारों से युक्त वीर के व्यक्तित्व को निरूपित करने में सफल हुई हैं।

वीरता और युद्ध का वर्णन करते समय बाहरी उपकरणों साज-सज्जाओं आदि का लम्बा चौड़ा विवरण देने वाले कवि तो मध्य-काल में बहुतेरे मिल जावेंगे पर इन सब के अभाव में 'वीर भावना' को चित्रित करने वाले कवि विरले ही मिलेंगे। वीर को 'काल्ही रो कलस' और सती रा नालेर' कह कर कवि ने अपूर्व व्यंजना शक्ति का परिचय दिया है-जिसका अनुकरण डिंगल के समर्थ कवि सूर्यमल्ल तक ने अपनी वीर सतसई में किया है।[1] जिससे उसके समस्त वीर संस्कार मुखर होगए हैं। एक पिपासा पीयस्यां पाहस्यां' हाथियां नू टला लाहस्यां' आदि वीरोक्तियां जहां वीर रस के परिपाक में सहायक हुई हैं वहीं उनसे वर्णन सरस भी होगया है।

वैलिक्रार कवि पृथ्वीराज डिंगल भाषा के कमनीय स्वरूप के प्रयोक्ता के रूप में प्रसिद्ध हैं ही अथवा मैं भी अपनी वचनिका में डिंगल भाषा की कठोरता में छिपे सरसता के उत्स को प्रकट करने का-गद्य और पद्य दोनों में-सफल प्रयास किया है। कवि अवसरोपयुक्त भाषा और शैली के प्रयोग में निपुण है। रत्नसिंह के दिवंगत होने के उपरान्त देवी शक्ति से निर्मित 'रत्नपुर' का वर्णन करने में कवि ने डिंगल भाषा के कमनीय स्वरूप को ग्रहण किया है। यथा—

१—धजकी महकी री कलस बलती री नालेर।
एकल पूगी टेकणी आन किनू वन वीर॥
—वीर सतसई

'नव लाख माहिल आस् विराज भति खड़ा रहिया छै। बारह गण मु हुआ आगे छिड़काउ करे छै। तीन प्रकार रो पवन वाये छै। सीतमन्द सुगन्ध अनेक परिमल भोसा छाई सहिर में छै। मु हुआ आगे आखाड़े रम्भा पातर नट नटिका संगीत धुनि करि करि दिखावे छै। ज्या रा मसूक हाथ पाउ कटि बड़। सीसह सिंगार किया। रंग प्रेम का मढ़। तेजपुञ्ज। रूप के मण्डल। काम की कली। चक्र नक्र बीज। सुख की सिलाव। विरह की बीज। ऐसी उरवसी वैसी अपछरा मु हुआ आगे हाव भाव कटाक्षो वेई वेई निरत करे छै।'

इस मान्यत कवि ने वर्णनात्मक शैली का ही अनुकरण किया है किन्तु वर्णनों में चित्रात्मकता उसका प्रशंसनीय गुण है। जिससे वर्णन कोरा वाक्-चातुर्य अथवा इतिवृत्त बनने से बच गया है। कवि ने वर्णनिका-शैली में मात्र-वर्णन नहीं किया है वरन् उनमें कहीं संवादों की योजना करके अद्भुत कौशल का परिचय दिया है। इस प्रकार के संवाद पात्रों की वीर-भावना व्यक्त करने के साथ ही युद्ध के लिए वातावरण निर्माण में सहायक हुए हैं। यथा—

'पिछि वैसा वातार कू कार राजा रतन मु छा कर बाति बोले। तक मार तोमे। ---------जनेखि वैत मारा तीरम घणी रौ काम बणी रौ परम साच बोलै। सौहां रा बोह सेसां रा वर्णका बोलै। बांका रौ खाट कटि मट्ट मट्टि कम्बाहुति बोलिजे। पातिसाहां रौ मजबड़ा झंडा सीझंडा मारि ठेलिजे। पातिसाहां रै खब बाज बोलै। पुरजा पुरजा हुई पड़ीजे। तो वैकुण्ठ चढ़ीजे। क्यू बारहठ अवराज? हां महाराज! महाराज रा मनोरथ श्री महाराज पूरे। अखिमाति ऊबरे। महाराज रा मु हुआ आगे लड़ा। टूक टूक हुई पड़ा।

यहां ऐसा लगता है जैसे एक वीर सेनानायक अपनी मूंछों पर बल देता हुआ नंगी तलवार लिए वीरता की प्रतिमूर्ति बना हमारे सामने खड़ा अपने सैनिकों को युद्ध के लिए प्रेरित कर रहा है। कवि की यह चित्रात्मक-सूचना अनूठी है और निश्चित ही उसे 'बड़ा कवि' सिद्ध करने वाली है। अंतिम दो पंक्तियां योद्धाओं के चारित्रिक-वैशिष्ट्य को प्रकट करने के साथ ही भावी युद्ध की भीषणता की ओर भी संकेत करती हैं। मिने-चुने शब्दों में कवि का यह लाघव प्रशंसनीय है।

वचनिकाओं-गद्य-में अन्यत्र भी संवादात्मक-शैली ग्रहण की गई है। परन्तु संवादों में पात्रों का उत्तर-प्रत्युत्तर बहुत कम हुआ है। एक पात्र की बात पूरी होने पर दूसरा बोल उठता है और वही क्रम आगे जारी रहता है। इस बात को दिखाने के लिए कवि को कहीं कहीं स्वयं भी बोलना पड़ा है। यथा- इतरा माहे बोलिओ रासो मु हर। दूसरो मधुकर। वर्णन के बीच बीच में संवादों की योजना से इनमें एक प्रकार की नाटकीयता आगई है। इससे पाठक ऊबता नहीं अपितु एक नवीनता का अनुभव करता है जो आगे आने वाले विषय के प्रति उसमें रुचि उत्पन्न कर देती है।

अथवा मूलतः कवि है। वचनिका-शैली में रचित उसके गद्य में पद्य का सा सौंदर्य है जो अपने पूरे प्रभाव निखार और मार्दव के साथ प्रकट हुआ है। उसका पद्य प्रवाह पूर्ण रम्य और प्रेषणीय है। यथा—

बरखा रिति बरणी सरद रित कहणी। रिण समन्द माहै सूर कमल विकसि विराजमान हुआ। चन्दा जैही चन्दवदनी अप्सरा सोलह कला सूधा जेह सम्पूर्ण उदित हुई। कैसी जैसी आसोज की पूनिम सरद रित जैसी उजली। फीजां ऊपरां ऊजली भासां रा डम्बर मल भाट करि जगाजोति जागी। जाणे बरफ रा टूक हेमाचल पहाड़ मार्ग विराजमान हुआ। हुमन्त रित लागी। सिसिर रित लागी। रक रहिल बागी। काइरांनू ठण्डि लागी। हाथ पग पूजै थड थड उर दात हाड़ गोड़ा खड खड।

यह मचांस एक सफल गद्य काव्य की सभी विशेषताओं से परिपूर्ण है। तन्मय भावुकता कोमल कल्पना ललित भाषा और आह्लादकारी सजीव शैली सभी का यहां सुन्दर सामंजस्य द्रष्टव्य है। ऋतुवर्णन की परंपरा हमारे यहां नई नहीं-संस्कृत कवियों ने भी इसे अपनाया है और मध्य कालीन भक्त एवं रीति-कवियों ने भी इसे ग्रहण किया है,किन्तु अप्रस्तुत का प्रस्तुत के साथ उसका जैसा घनिष्ट संबन्ध निर्वाह वर्ण्य विषय के साथ उसका जैसा अनूठा संयोजन चारण-चारण कवियों में ही मिले तो मिले। रण समुद्र में शूर-वीर रूपी कमल के विकसित रूप को चित्रित करने के साथ सोलह शृंगारमयी चन्द्रवदनी अप्सरा का उदय दिखा कर कवि ने न केवल उत्तम काव्य-प्रतिभा का परिचय दिया है अपितु वीर रस्य की काव्य-रूढ़ि का निर्वाह करते हुए संध्या समय कमल के संकुचित होने के साथ ही वीर गति प्राप्त योद्धा के अप्सरा द्वारा वरण किये जाने का मार्मिक संकेत भी कर दिया है। रक रहिल बागी (अर्थात तलवारों के झटकों की आंधी चलने लगी) वाक्य कवि की भाषागत समाहार शक्ति का अच्छा नमूना पेश करता है। आगे काइरा नू ठण्डि लागी कह कर कवि ने वर्णन को विषय से संबद्ध कर पूर्वा पर का संबन्ध जोड़ दिया है। अंत के दोनों वाक्य डिंगल के साधारण से साधारण शब्दों के ध्वन्यात्मक गुण को प्रकट करते हैं।

गद्य लिखते समय प्रायः वचनिका की तुकांत गद्य-शैली की अपनाई गई है किन्तु तुक के प्रति कवि का दुराग्रह कहीं नहीं है। उसने भाव के मूल्य पर अंत्यानुप्रासिकता स्वीकार नहीं की है। गद्य-खण्डों में सर्वत्र तुक-निर्वाह नहीं है बात को आगे बढ़ाने के लिए भी कवि ने तुक भंग किया है। वर्णन करते करते जहां कवि अत्यधिक भाव विह्वल हो उठा है वहां उसने तुक का मोह एक दम त्याग दिया है और उसने काव्य की स्वाभाविक भाव भूमि पर उतर कर रचना की है। ऐसे स्थलों का काव्यात्व दर्शनीय है। इसके लिए शरद्-ऋतु वर्णन वाला ऊपर उद्धृत उदाहरण द्रष्टव्य है। इसमें कवि ने तुक का ताना बाना तोड़ कर अपने भावों की स्वाभाविक अभिव्यंजना की है। वचनिकाओं में कहीं कहीं साधारण पद्य भी प्रयुक्त हुआ है। यथा—

महाराज विमाह रै आयम मंपस प्रमत सम्माहनी कीवै । पिल श्री महाम्मरप री आयम । एक बार सू रां पूरां अवतालसिव चिनियां रा बडा राय माहे बडा दुहा पवाडो । ज्यां सूरां पूरां रा आवरां रा केत चलणाह मे ऊमा हुयै ।

ऐसे उदाहरण अपवाद स्वरूप ही हैं अन्यथा सर्वत्र नाद-गुण युक्त प्रवाहमय तुकांत गद्य की अनोखी छटा छिटकी हुई है। कवि की एक बड़ी विशेषता यह है कि उसने तुक मिलाने के लिए कहीं भी वाक्य-विन्यास के सामान्य व्याकरण-नियम को भंग नहीं किया है। यही कारण है कि 'वचनिकाओं' में दो-दो सम्मों तक के वाक्य प्रयुक्त हुए हैं।

वचनिका-शैली अर्थात गद्य-शैली का प्रयोग कवि ने प्रायः कथा-क्रम को आगे बढ़ाने अथवा कही गई बात का तात्पर्य जोड़ने के लिए किया है। कहा जा सकता है कि आलोच्य 'रचना' का यह काव्यत्व की दृष्टि से जितना सरल सरस और मार्मिक है उतना ही व्याकरण की दृष्टि से प्रौढ़ और पुष्ट भी।

गद्य में हमें जिस शैली कौशल के दर्शन होते हैं वह पद्य में आकर अपने चरम उत्कर्ष को पहुंच गया है। जैसा कि कहा जा चुका है कि 'वचनिका' एक वीर-काव्य है और वीरत्व ही उसका प्रतिपाद्य है। कवि ने अपने प्रतिपाद्य की प्रतिष्ठा हेतु सर्व प्रथम उसके अनुकूल वातावरण की सृष्टि की है। यह अत्यन्त आवश्यक भी है; क्योंकि केवल वीर रस का नाम लेने से ही सहानुभूति नहीं हो जाती, वीर रस का वातावरण उपस्थित किये जाने पर ही रस का सम्यक आस्वादन किया जा सकता है।[1]

विषयानुकूल वातावरण के निर्माण के लिए कवि प्रारंभ से ही सचेष्ट रहा है। अपने चरित नायक की वीर-वंश परंपरा का संकेत करते हुए उसने उसके वीर संस्कारों का ही आख्यान किया है। प्रारंभ में ही रत्नसिंह को नवराज विमल वंसां' और 'रहरांण माण रतन करतल भारथ लग्न' से संबोधित कर वीरत्व को ग्रंथ की टेक के रूप में स्थित कर दिया है। तदुपरांत जीवन चित हुई साहिबहां और 'साहिबाणां और' द्वारा परस्पर विरोधी और संकटापन्न स्थिति का संकेत कर बड़ी हाजिरी आवरा हु ति ज्वारां सिवां साहिब बम्बरां छल्ल आरां' से जसवंतसिंह का ससैन्य प्रस्थान दिखा कर भावी युद्ध की सूचना दे दी गई है। सेना के प्रस्थान का चित्र कवि की उपरोक्त भाषा-शैली का प्रतीक है—

> वहन्ती हुती चन्दि ग्रीपे बहोरं
> गती हेम मी मे चाली चालि गोरं।
> कतारे कठहे चले कूम काला
> महे बावला आलि नाहन्त बाला॥

१—डा० कन्हैयालाल सहल-वीर सतसई की भूमिका पृ० १०१

यहां कवि की बिम्बग्राहिणी प्रतिभा ने जो चित्र अंकित किया है वह इस भाव में इतना पूर्ण प्रभावशाली और व्यंजनामय है कि पाठक के मानस-चक्षुओं के सामने अदम्य उत्साह और वेग के साथ प्रस्थान करती हुई विशाल वाहिनी का अविकल चलचित्र उपस्थित हो जाता है। प्रथम पंक्ति के प्रथम शब्द से अंतिम पंक्ति के अंतिम शब्द तक आते आते ऐसा लगता है कि मदमाते सैनिकों की कई पंक्तियां आंखों के आगे होकर निकल गई हैं किन्तु अभी सेना का अंतिम छोर नहीं आया है। अप्रस्तुत के माध्यम से प्रस्तुत को अभिव्यंजित करने की प्रणाली काव्य में बहु-प्रयुक्त है, किन्तु प्रस्तुत और अप्रस्तुत का ऐसा गुण धर्म और ध्वनि-साम्य अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। नदी हेम धो ले चाली जाणी नीर से वेगवती पहाड़ी नदी की भांति द्रुतगति से प्रस्थान करती हुई सेना का ही चल चित्र सामने नहीं आता अपितु अश्व खुरों की खड़खड़ाहट हाथी घोड़ों की चीख चिंघाड़ और सैनिकों की पद चाप भी प्रतिध्वनित होती है। कवि की यह बिम्ब विधायनी-शैली सीमित शब्दों में अपूर्व अभिव्यंजना-कौशल का प्रतीक है। इसी प्रकार अंतिम दो पंक्तियां भी कवि की चित्रात्मक सृजना की प्रतीक हैं। यहां काले ऊंटों की सघन पंक्तियों की मात्रमास के घटा टोप बादलों के साथ उत्प्रेक्षा अत्यन्त ही सार्थक बन पड़ी है।

कवि के काव्य चातुर्य का एक प्रमाण यह भी है कि उसने पक्ष और प्रतिपक्ष दोनों में समान रूप से वीरता और उत्साह का संचार दिखाया है। एक ओर जहां उसने नायक-पक्ष के क्षत्रिय योद्धाओं को महाभारत के से विकट युद्ध के कर्ताओं के रूप में चित्रित किया है—

सगे वंस छत्तीस हिन्दू सपत्थं
करेवा महासूर भारत्थ कत्थं।

वहीं दूसरी ओर प्रतिपक्षीय यवन सैनिकों को काल के रूप में उपस्थित किया है।

जवद्ध जुद्धं हठाणां बंधाणं
चलत्था इसा चालिया काल चालं।

यदि क्षत्रिय अपने तेज के प्रताप से तलवारें तोड़ने का सामर्थ्य रखते हैं—

तरवार ज्यां तेज रा ताप तुटे।'

तो यवन भी बल और वीर्य में उनसे किसी प्रकार कम नहीं—उनको युद्धों में भी उन्मत्त गजों के कंधे तोड़ देने वाला बल और युक्ती में सिंहों का वध करने की क्षमता है—

मरीडे गजां कंध तोडे मरद्द
रहवे जिता सिंघ मुक्की रद्द।

प्रतिपक्ष के बल और वीर्य का यह वर्णन वहां वीर रस के परिपाक की दृष्टि से उचित है वहीं मूल कथा के अनुकूल भी है। प्रतिपक्ष की दुर्धर्षता और विकटता के प्रत्यक्ष हो जाने से नायक-पक्ष की पराजय का औचित्य सिद्ध हो गया है। यही कारण है कि पराजित हो जाने पर भी उसकी उच्चाशयता अक्षुण्ण बनी रही है।

पद्य में जिस संवाद शैली का प्रतिपादन किया गया है उसका पद्य में भी पूर्ण कौशल के साथ निर्वाह हुआ है।

औरंगजेब ने जसवंतसिंह को फ़रमान भेज कर कहा है—

राड़ म करि इक तरफ रहि
आगे पीछ आव।

जसवंतसिंह का उत्तर है—

मो थां आडो मस्हिओ
कहो जांण हूवं केम।

इसके बाद जसवंतसिंह भावी युद्ध के विषय में अपने सामंतों की सम्मति चाहते हैं—

उमरां नरां अनंति ॥
कहो आज कांसू कहां ॥

उत्तर मिलता है—

राजि जितरो कुण आणै
मती बरतत तपतेज
राजि सूरिब हिंदूआणै।

संवाद की दृष्टि से एक उदाहरण और द्रष्टव्य है—

रिण रमाइण जिसी रचावां
लडे नरां चंद नाम लिखावां।
जसवत भेज बोलियो ज्यारा
तण माहेस अरज की त्यारां ॥
जोधां भणी भणा दिन जीवो
बल लिणयार बंस नी दी दी।
दे सीवो पतिसाह सूक दस।
सबसी साज मरण सुमिलब्बम् ॥

इस प्रकार के संवादों से जहां वर्णन कोरे इतिवृत्त बनने से बच गये हैं वहां इनसे पात्रों के भावों की अभिव्यक्ति भी हुई है। संवादों की योजना में कवि ने अपनी सूक्ष्म बुद्धि का परिचय दिया है।

कवि ने वीर-वर्णन में वीरों का केवल बाह्य चित्रण ही प्रस्तुत नहीं किया है अपितु उनकी अंतः प्रकृति का भी सम्यक् उद्घाटन किया है। यथा—

रिण मो रहिया राव रहेसी
कर्म वां कोइ न पुरी कहेसी।

× × ×

ताम सुहार किया खग तीखे
बीजै मचि मिसस्यां हसि बोले।
बीचै तके मसां परि आवी
आवै सबि मो साचै आवो॥

रत्नसिंह के इन उद्गारों में उसके समस्त संस्कार मुखर होकर प्रकट हुए हैं। जगा ने केवल अपने चरित-नायक की अंतः प्रकृति का उद्घाटन करके ही अपने कार्य की इति श्री नहीं मानली है अपितु उसने स्थान-स्थान पर अन्यान्य अन्य वीरों की मनो भावनाओं का भी अभिव्यक्ति दी है। उसकी यह अभिव्यक्ति कितनी सबल सटीक और व्यंजना पूर्ण है—

म रस्ता म मारे महाकुल माया
करे काम सोसी जिसी हक काया॥

कवि की वर्णन पटुता की ओर पहले इंगित किया जा चुका है। स्थूल कथा वस्तु के अभाव में कवि की प्रतिभा वर्णनों में ही उभरी है। वचनिका में इतने अधिक वर्णन आये हैं कि वे किसी भी कवि के काव्य-कौशल की कसौटी बन सकते हैं, किन्तु जगा ने अपनी कल्पना शक्ति और अद्भुत अभिव्यंजना कौशल से इन विविध वर्णनों को अपने काव्य को और भी मनोहारी बना दिया है। कवि की चित्र-विचारणी शैली ने जिन चित्रों की सृजना की है वे चारणी साहित्य में अपूर्व हैं। यथा—

मयाणंक चीव जिके रोम मूरा
पर वे बार बीया हिसे बाट पूरा।
प्रलम्ब भुजी चक्र चक्री परक्षी
भुजां अम्म पेहा बली सम्बमक्षी॥

यह वर्णन जहां मुगलों का रेखा-चित्र प्रस्तुत करता है वहीं उनके जातिगत संस्कारों और प्रकृति पर भी प्रकाश डालता है।

रण-क्षेत्र में रत्नसिंह के धराशायी होने पर कवि ने अपनी समर्थ लेखनी से जो चित्र अंकित किया है वह चित्र-विधान की सीमा कहा जा सकता है। यथा—

'वणै मिण से सर सेन्ह सुवीस
सोहे किर मंत मिरम्बर सीस।'

(अर्थात् रत्नसिंह के शरीर पर तीन सौ बाण तथा छत्तीस भालेलगे हैं, वे ऐसे शोभित हो रहे हैं कि मानों पर्वत शिखर पर बांस उगे हों।)

कवि ने यहां रत्नसिंह की विशाल काया के लिए समूचे पर्वत को उपमान न बना कर केवल पर्वत-शिखर को उपमान के रूप में प्रस्तुत किया है। बाणों और भालों के लिए बांसों की उपमा भी एक दम स्वाभाविक है—भालों के दण्ड तो बांसों के हैं ही बाण बांसों की छोटी-छोटी शाखाओं के रूप में ग्रहण किये जा सकते हैं, बाण बांसों से नीचे हैं, बांस की शाखा भी नीचे से ही फूटती है। कवि ने ऐसे ही वर्णनों में अतिशयोक्तियां भी छिप गई हैं।

पड़े बाज गजराज
राउ राउत नरेसुर।
पड़े साम उमराउ
सुबल भुग्ग मीरम्बर।
पड़े तुरंग पड़ पत्ता
इसा सीसे मणिहारे।
जणारी पिण आणि
आणि बाणइ विणजारे।

(अर्थात्–रण-क्षेत्र में राव राउत नरेश्वर हाथी और घोड़े गिर पड़े हैं। साम उमराव और शूरे सुभट गिर पड़े हैं—सजे हुए हाथी और घोड़ों के यह गिर पड़े हैं। वे सब ऐसे लग रहे हैं मानों किसी बनजारे ने अपनी बालद ठहराई हो।)

रण-क्षेत्र में इधर उधर बिखरे हुए वीरों के शवों और हाथी घोड़ों के पिण्डों को बनजारे की ठहरी हुई बालद के रूप में चित्रित करना कवि की प्रतिभा का ही काम था। यह चित्र जितना अर्थ पूर्ण है उतना ही परिस्थिति के अनुकूल भी।

कवि ने जिस कौशल के साथ स्थिर चित्रों का निर्माण किया है, उतने ही लाघव से कतिपय सुन्दर गति-चित्र भी प्रस्तुत किये हैं। यथा—

कटकां किहुं हुइ कूल
गइ गइ चम्मायल हुई।
हुइ गइ घड हुइ है घरां
चढिया पीरस चूच॥
गइ गहि हिलै गहीर
पाइक घोडक पडतला।
मिलया फिर चाली महण

नगाड़ों की गड़ गड़ाहट से उत्साहित वीरों के घोड़ों पर चढ़ने की क्रिया को जैसे यहां शब्दों में बांध दिया गया है। रणातुर उत्तेजित सैन्य समूह की प्रस्थान-गति को सौ सौ नदियों के जल-जोर की गति के समान बतला कर कवि ने एक मनोरम गति-चित्र उपस्थित कर दिया है।

रण-क्षेत्र में वीर-गति प्राप्त वीरों के अप्सराओं द्वारा वरण किए जाने की गति को अरहट घटी की अप्रस्तुत योजना से चित्रित कर कवि ने अपनी सूक्ष्म चित्रण-कला का परिचय दिया है। यथा—

नरवर सूर निगेम मारव मधि रीती भरी
आवे जावे अपछरा जपि अरहट घडि धेम ॥

यहां अप्रस्तुत कर से युद्ध की त्वरा की नितांत ही मार्मिक अभिव्यंजना हुई है।

कहीं कहीं कवि ने वर्ण्य-वस्तु का समग्र चित्रण न करके संकेत भर कर दिये हैं। यथा—

हाथ बड़ ओनड़ पड़िआ राजा पारवती
राजा ऊभी रत्न सी पाछे तरां पहाड़ ॥

इन पंक्तियों में कवि ने खेत रहने वाले समस्त योद्धाओं का वर्णन न करके रत्नसिंह को बुद्ध विहीन पर्वत कह कर संकेत भर कर दिया है। यह संकेत इतना सहज स्पष्ट और व्यंजना पूर्ण है कि इससे पाठक के सामने सम्पूर्ण युद्ध का चित्र उपस्थित हो जाता है।

हाथियों और घोड़ों के वर्णनों से यद्यपि कथा-प्रवाह में विराम आया है, तथापि कुछ काव्य की दृष्टि से इनका सौंदर्य प्रशंसनीय है। कवि की भाषा शैली का चमत्कार निम्नलिखित पंक्तियों में देखिये—

कपोम् चमा गजा चोम् सिन्दूर कैसे
ओमै इन्द्रजालंम जैसा अरेसे।
तिमां माह ऊभी बणी रेख तातं
पर्व उप्परै जाणि पूनी पमातं ॥

नवीन उपमानों से परिपुष्ट प्रस्तुत और अप्रस्तुत का उल्लेखमय यह संश्लिष्ट चित्र अत्यंत ही भव्य और हृदयग्राही बन पड़ा है। सिन्दूर-चर्चित गज-गण्डस्थल के लिए कपोम शब्द का उपयोग भी नितांत ही मार्मिक है। गज भाल पर अंकित लाल रेखा की पर्वत पर पूनो पमाव से उल्लेखा प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों की झांकी प्रस्तुत करने में समर्थ है।

इस प्रकार कवि ने जिस वर्णनात्मक-शैली को अपनाया है उसमें वह आद्योपांत सफल रहा है।

जया की शैली की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि यह प्रसंग के अनुसार द्रुत और विलम्बित हुई है। रचना के प्रारम्भ में हमें जिस आडम्बरपूर्ण एवं द्रुत शैली के दर्शन होते हैं वह युद्ध-वर्णन में एक उफान सा धारण करती हुई रणसिंह की मृत्यु के चित्रण में भावाक्रांत होकर विलम्बित होगई है। कहां तो किनारे तोड़ कर बहने वाली यह है द्रुत-शैली बहन्ती हुई पन्नि धोते बहीरं। नदी हेम धी मे वाली वाणि नीरं और कहां यह भावाक्रांत शोकमय स्वर-संयोजन 'साज रो कोट उभ्भेणि सहि विधि रणरज पडे अथवा 'तिणि वेला राजा रैण साहि रा मण्डल बुणि विणि विया। सर्व सहां सु राम दिया। नरवेई जमाई। अमर रैह पाई।

'वचनिका' की भाषा 'डिंगल' है। कवि डिंगल भाषा का पंडित है। भाषा के प्रयोग में उपयुक्त शब्दावली नाद-सौंदर्य अलंकार आदि का उसने पूरा ध्यान रखा है। भाषा में कैवेल सजावट और कृत्रिमता का सर्वथा अभाव है। स्वाभाविकता और भाव-बाहुल्य चकित हुए हैं। काव्य का मुख्य विषय 'युद्ध' होने के कारण कवि ने अपनी भाषा को बल उत्साह और तेज समन्वित बनाया है।

कवि ने शब्द चयन में बड़ी सावधानी से काम लिया है। शब्द अपने लाक्षणिक अर्थ को प्रकट करने के साथ ही भाव व्यंजना में भी पूर्ण समर्थ हैं। शब्दों की ध्वनि से ही भाव स्पष्ट हो जाते हैं। यथा—

धने धोम विधि धार
बसण वैकुण्ठ विचारे।
गजे मोह चढि लोह
लोह वाहो बुध नेवाण।
साणि मूस ऊनमे
वाणि पाण्डव अरज्जण।
ऊनहसे रोम पौरुसि प्रति
ग्रहे पज्जण नैवरां।
कही सरीर ऊपरि रतन
तुटी सीस पल्लवरां।

वीर रस की रचना होते हुए भी वचनिका में संयुक्ताक्षर शैली का प्रयोग बहुत कम हुआ है।[1] संयुक्ताक्षर शब्दावली और शब्दों को बिना तोड़े मरोड़े हुए भी कवि वीर रस के प्रतिपादन में सफल हुआ है। यथा—

सर्वा चढि वार हुवे वि वि खण्ड
— रर हिन्दु मनेच्छ प्रचण्ड।

रणंतसि मीर जिहीं कहिरास
सत्राहसि जाणि कि माहव खास ॥

यहाँ संत की दो पंक्तियों में शब्दों के ध्वन्यात्मक-गुण से वर्ण्य विषय की अभीष्ट ध्वनि मुखर होकर स्वतः अभिव्यक्त होगई है।

कवि ने कहीं भी 'ट' कार ड कार आदि सोमहर्षक वर्णों का अस्वाभाविक और कृत्रिमरूप में प्रयोग नहीं किया है। दो-एक स्थलों पर ऐसा आयोजन किया भी है तो वह वातावरण के अनुरूप चित्रण के लिए अथवा वांछित ध्वन्यात्मक गुण लाने के लिए ही हुआ है। कवि ने अपनी भाषा में नाद ध्वनि का संचार करने के उद्देश्य से छंद के चरण के प्रत्येक शब्द का आरंभ प्रायः समान वर्ण से किया है।[1] यथा—

क गुणपति गुणे गहीर
ख रिण मो रहियां राज रहेसी
ग बडाला बई बिड़ बीराबीरं
घ भण भायै बडिभास
ङ० रण रमण रिण रूक
च लाख लखीक लस्सकर,

इसी प्रकार कवि ने अपनी शब्दावली में संगीतात्मक प्रभाव उत्पन्न करने के लिए समान शब्द-खण्डों की आवृत्ति भी की है।[2] यथा—

क मारण मरण करण रण मायो
ख करण मरण पह काज

इतना सब कुछ करने पर भी उसने कहीं भी प्रचलन और अप्रचलित शब्दों की भरती नहीं की है।

वचनिका की भाषा की यह विशेषता है कि उसमें एक ही शब्द के दसियों पर्यायवाची शब्द प्रयुक्त हुए हैं। अकेले मुसलमान शब्द के लिए २० पर्यायवाची शब्द प्रयुक्त हुए हैं। यथा-असुरायण तिरुष, कु वालिम लाल चकपा चामरिमाल कु बलाल जवन ईंगाम पीवा मनेष मेस मु बल मुंबलास मेछाम रवद रीद रीद्राम रुद्र रीद्रायण।

इसी प्रकार हाथी घोड़े तलवार आकाश आदि के लिए भी अनेक पर्यायवाची शब्द आये हैं।

---

१ डा० टैसीटोरी-'वचनिका' रा० रतनसिंह महेसदासोतरी की भूमिका पृ० ४
२ वही पृ० ४

भाषा प्रसाद गुण सम्पन्न है इसके लिए एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा—

बनिता मुख पूनिम चंद बणी
प्रिय मू हु चखां प्रिय रूप मणी।
कच कोकिल दन्त अनारकली
अध नासक अलक कमा उजली॥

अरबी फारसी के शब्द यथेष्ट संख्या में प्रयुक्त हुए हैं किन्तु वे सर्वत्र राजस्थानी रूप ग्रहण किये हुए हैं। कवि ने संस्कृत के तत्सम शब्दों का भी प्रयोग किया है किन्तु उसकी रचना में तद्भव शब्द ही अधिक मिलते हैं।

भाव-व्यंजना

✓वचनिका एक भाव प्रधान वीर रसात्मक काव्य है। रहस्य कथा तत्व के अभाव में कवि की भाव प्रवणता ही उसके काव्य-प्रणयन का आधार बनी है। कवि ने अपने आश्रयदाता महाराजा रतनसिंह के निःस्वार्थ त्याग और बलिदान पूर्ण वीरत्व को प्रतिपादित करते हुए क्षात्र धर्म और आर्य-गौरव की भाव-मयी अभिव्यंजना की है।

जयमल स्वयं वीर-क्षत्रिय था उसने अपनी रचना में क्षत्रिय जाति के आदर्शों विश्वासों और संस्कारों का अत्यंत ही मार्मिक चित्रण किया है जिससे इसमें वीर-रस की उद्दाम-धारा फूट पड़ी है।

यश और निष्कलंक-कीर्ति वीर-क्षत्रिय की थाती है जिसे वह विकट युद्ध रच कर प्राणोत्सर्ग द्वारा अर्जित करने के लिए सदैव प्रस्तुत रहता है—

'रिण रमाहण जिणी रचावां
गढ़ मढ़ चंद नाम लिखावां।

अपने नाम को चन्द्रमा पर अंकित करने की आकांक्षा से प्रेरित वीर भला कब चाहेगा कि जय उसे बुरा कहे—

'रिण मो रहिया राज रहेसी
कमंधा कोई न बुरी कहेसी।

हार जीत हरि के हाथ है अतः प्रतिद्वन्द्वी से भिड़ जाना ही श्रेयस्कर है—

'हार जीत बाताँ हरि हाथे
जिहुं मतिमाहि सरिस हू आवे।

वीर सत्व' पर है और निर्णय हरि के हाथ है—यही विश्वास उसे कदम उठाने के लिए प्रेरित करता है—

'ताम जुहार किमो सम तोमे
बीजे नवि मिलसां हमि जोमे।

रणंतसि मीर जिही रहिरास
लसाहसि जाणि कि माहव लास ॥

यहाँ छंद की दो पंक्तियों में शब्दों के ध्वन्यात्मक-गुण से वर्ण्य विषय की अभीष्ट ध्वनि मुखर होकर स्वतः अभिव्यक्त होगई है।

कवि ने कहीं भी 'ट' कार 'ड' कार आदि लोमहर्षक वर्णों का अस्वाभाविक और कृत्रिमरूप में प्रयोग नहीं किया है। दो-एक स्थलों पर ऐसा आयोजन किया भी है तो वह वातावरण के अनुरूप चित्रण के लिए अथवा वांछित ध्वन्यात्मक गुण लाने के लिए ही हुआ है। कवि ने अपनी भाषा में नाद ध्वनि का संचार करने के उद्देश्य से छंद के चरण के प्रत्येक शब्द का आरंभ प्रायः समान वर्ण से किया है।[1] यथा—

क गुणपति गुणे गहीर
ख रिण भो रहियां राज रहेसी,
ग बखाणा बहे विहु बीरावीरं
घ घण बाधै बडिमाल,
ङ० रास रमण रिण रक्ष
च साख सलीक सस्सकर

इसी प्रकार कवि ने अपनी शब्दावली में संगीतात्मक प्रभाव उत्पन्न करने के लिए समान शब्द-खण्डों की आवृत्ति भी की है।[2] यथा—

क मारण मरण करण रण माचो
ख करण मरण पह काज

इतना सब कुछ करने पर भी उसने कहीं भी पाखण्ड और प्रचलित शब्दों की भरती नहीं की है।

वचनिका की भाषा की यह विशेषता है कि उसमें एक ही शब्द के दसियों पर्यायवाची शब्द प्रयुक्त हुए हैं। अकेले मुसलमान शब्द के लिए २० पर्यायवाची शब्द प्रयुक्त हुए हैं। यथा असुरायण तिमूर, खुदाविंद खान चकवा चाकरिमाल कु यवान जवन धंधाल धीवा मनेस मेख मु यल मु वलाल मेछाल रवर रौद्र रौद्राल रुद्र रौद्रायण।

इसी प्रकार हाथी घोड़े तलवार आकाश आदि के लिए भी अनेक पर्यायवाची शब्द आये हैं।

---

१ डा० टेसीटोरी-'वचनिका' सं० रतनसिंह महेसदासोतरी की भूमिका पृ० ४
२ वही पृ० ४

भाषा अपार गुण सम्पन्न है इसके लिए एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा—

अमिता मुख पूनिम चंद बखी
प्रिय नू हु चलो प्रिय रूप भली।
कण्ठ कोकिल रम्भ मनारकली
सब बनक मनरक कला उजली॥

धरती पारसी के सब पर्याप्त संख्या में प्रयुक्त हुए हैं किन्तु वे सर्वत्र राजस्थानी रूप ग्रहण किये हुए हैं। कवि ने संस्कृत के तत्सम शब्दों का भी प्रयोग किया है किन्तु उसकी रचना में तद्भव शब्द ही अधिक मिलते हैं।

भाव—व्यंजना

✓वंशभास्कर एक भाव प्रधान वीर रसात्मक काव्य है। स्थूल कथा तत्व के अभाव में कवि की भाव प्रवणता ही उसके काव्य प्रणयन का आधार बनी है। कवि ने अपने आश्रयदाता महाराजा रामसिंह के निःस्वार्थ त्याग और बलिदान पूर्ण वीरत्व को प्रतिपादित करते हुए क्षात्र-धर्म और आर्य-गौरव की भाव-मयी अभिव्यंजना की है।

अपने स्वयं वीर-क्षत्रिय था उसने अपनी रचना में क्षत्रिय जाति के आदर्शों विश्वासों और संस्कारों का अत्यंत ही मार्मिक चित्रण किया है जिससे इसमें वीर रस की उद्दाम-धारा फूट पड़ी है।

यश और निष्कलंक-कीर्ति वीर-क्षत्रिय की थाती है, जिसे वह विपत्ति युद्ध रण कर प्राणोत्सर्ग द्वारा अर्जित करने के लिए सदैव प्रस्तुत रहता है—

'रिण रामाहण जिसो रचावां
सदै मरां चंद नाम सिझावां।'

अपने नाम को चन्द्रमा पर अंकित करने की आकांक्षा से प्रेरित वीर अपना कर्त्तव्य चाहेगा कि जन उसे बुरा कहें—

'रिण भी रहिया राज रहेसी
कमंधा कोई न पूरी कहेसी।"

हार जीत हरि के हाथ है, अतः प्रतिद्वन्द्वी से भिड़ जाना ही श्रेयस्कर है—

हार जीत वातां हरि हाथे
भिड़ं मतिमाहि सरिम हू भाथे।

वीर 'भाथ' पर है और विजय हरि के हाथ है—यही विश्वास उसे युद्ध करने के लिए प्रेरित करता है—

"हाथ कुहार किसी नव होय

बीबी तिके भलां धरि बाधी
धर्म सगि भौ सार्थ प्रा बो ।।

धर्म रक्षार्थ प्राण देने पर स्वर्ग की प्राप्ति होती है। इसी भरोसे पर वीर मरने को प्रस्तुत हो जाता है—

कामे मरण मनोरथ कीधा
साम मरण भारथ मुनि लीधा ।

इस असत्य संसार में सब निःसार है मात्र-स्वामी-धर्म ही सत्य है। वही धन्य है जो लड़ना और मरना जानता है।[1] तो फिर वीर इस धर्म का त्याग कैसे कर सकता है? और फिर यहां तो खग्गधनी की पवित्र तीर्थ यात्रा है—वह खण्ड-खण्ड होकर गिरेगा और निश्चित ही स्वर्ग का अधिकारी बनेगा—

खांडा री खाट खडि भटभडि रुण्डाहुंडि खेलीजै ।" पाति-साहां रै खग्ग घाउ कीजै । पुरजा पुरजा हुइ पडीजै । तो वैकुण्ठ वडीजै ।

निज धर्म रक्षार्थ क्षत्रिय असि-धारा का पान करेंगे और शत्रु-दल को भी करवायेंगे *माथे फोड़ेंगे और कुड़वायेंगे एवं रणांगण में बादलों की तरह हाथियों से टक्कर खायेंगे।* महाकष्ट को शीश अर्पित करेंगे तो अप्सराएं उनका वरण करेंगी देवता उनकी पीठ ठोकेंगे और जग में उनकी कीर्ति रहेगी—

"हक पिसाणा पिसणां पाइरणां। बाबर बिहुंखिणां बिहुंखाइणां। रिण खेत रै विचै रेपिचै बाणांसि मतवाला थू घूमतां थकां हाथियां सू टक्का खाइणां। महाकष्ट नै सिर पैस करां। अपछरां वरां। देवता स्याबास कहिसी। बात रहिसी।

इसीलिए युद्ध' वीरों के लिए एक अलभ्य अवसर है—वे इससे अपने वंश को समुज्ज्वल करते हैं (८६ वचनिका पंक्ति १-५) और रण-समुद्र में असि-जहाज पर चढ़ कर संसार सागर से पार हो जाते हैं—

'असा बीस रिण समग्ग माहे असि जिहाज चढां। किसम्मा वडा मारि पारि करां। मरां तो अपछरां वरां नहीं तो जीवित सिम्भ हुइ ऊबरां।

उबरने और अप्सराओं को वरण करने की उत्कट आकांक्षा वीर में अदम्य उत्साह का संचार करती है—

पूरां पूरां रा चांवरा रा वम वणपाइ में ऊभा हुवै। पोरिस वडै तेलि बाराण्ड मडै।

यश की अदम्य आकांक्षा स्वर्ग चढ़ने की प्रबल चाह और स्वामी-धर्म की टेक से प्रेरित उस *अवसाण सिद्ध' वीर के लिए जीवन हेय बन जाता है। फलतः वह*

१—इसका फुट नोट कृपया अगले पृष्ठ पर देखें।

वीरत्व का बाना धारण करके मनुष्य का भंजन करता हुआ जगत को टुक-टुक कर डालता है—माया को स्याम कर अपनी काया को वज्र की भाँति भंजनशील बना देता है (जो वरि टू ती है तो कुमती भी है)—

'पड़ग्गा विप्रे माय धम्मा प्रचण्डं
सत्तां मारि सग्गे करै खण्ड खण्डं।
मरत्ता न मारै महाजुद्ध माया
करै काय सोती जिसी टूक काया॥

वीर के संस्कार चिर, निश्चित अटल और विश्वास भावरूप है, अतः उसके रक्त-सेल में भाव जड़े होने का प्रश्न ही नहीं उठता वह तो भावने भावों तक पर प्रहार नहीं करता—

न भावै त्रिके बुद्ध भावां न म रै
सरीरो हुवां खण्ड पिण्डाण सारे।

इस प्रकार कवि ने अपनी तीव्र वीर सशक्त अभिव्यंजना से क्षत्रिय जाति के तेजोमय वीरत्व गौरव-मण्डित धर्म-संस्कार और उच्च कर्तव्य-भावना का नितांत मार्मिक एवं प्रभावशाली चित्रण किया है। वीर-रस के परिपाक के लिए यही अपेक्षित है, क्योंकि 'उत्साह स्वतः व्यक्त नहीं होता, किसी न किसी भाव से प्रेरित होकर प्रकट होता है। जिस भाव से प्रेरित होकर वह प्रकट होता है, उस भाव का अभीष्ट कोई कर्म होता है और वह कर्म उत्साह की सहायता से सिद्ध होता है।[२]

वचनिका में हम 'उत्साह' की जो लहर आद्योपांत व्याप्त देखते हैं वह क्षत्रिय योद्धाओं के जातीय संस्कार जन्य वीर-भावना से प्रेरित है। इस भावना का अभीष्ट कर्म 'युद्ध' है जिसकी सिद्धि उत्साह से हुई है। यही भाव-जन्य 'उत्साह' रत्नसिंह को युद्ध-कर्म के लिए प्रेरित करता है इसी उत्साह से उसकी रोमावली में पौरुष का संचार होता है और यही 'उत्साह' उसकी भुजाओं में हाथियों को पछाड़ने का बल भी भरता है। यथा—

भडे भीम विधि धार भरणा भुजुष्ठ विचारे।
तबै मोह चढि सोह सोह बीहां बुध लेपण।
ताणि भुज ऊपरे बाणि पाखरब्ब बरज्जण।
अम्हणे रोम पौरसित अति अहे पछाडण मैयरां।
चढ्यो सरीर ऊपरि रतन टूटी सीस पसच्चरां।

१—सामंत सूर सामन्त अति सज्जिय भज्जिय जानिये।
संसार अवठ गति, दहै तत्त करि मानिये॥ पृथ्वी राज रासो। छंद २०२ सं० ४४

२—द्रष्टव्य—श्री अटेकृष्ण—वीर-रस का भारतीय विवेचन पृ० : ४।

वीरों का यह 'उत्साह' अपने सामने काल को अपनी चाल से बचाने वाले 'सहँवालि मू बचावे काल मूता' और अपने पौरुष से स्वयं बचने वाले बसै आपरे रौस मैसा कुपल्ल' प्रतिपक्ष के योद्धाओं का आसम्बल पाकर मड़मड़ाते नगाड़ों के तिन्नु राम- सिन्नू सह् सह् नह् नीसाण निहस्से आकाश से वार और गोलों की वर्षा विडंबना लायी बरसवा गोला सर मैनाण -एवं डाकनियों-योगनियों आदि के रण-क्षेत्र में मुक्त विचरण से उद्दीप्त होकर और अप्सरावरण की कामना, देवताओं से साधुवाद प्राप्त करने की इच्छा अक्षय कीर्ति (महाइन्द्र मे सिर पेस करां अपछरां वरां। देवता स्याबास कहिसी। बाह रहिसी।) की आकांक्षा आदि संचारियों से परिपुष्ट होकर वीर रस के पूर्ण परिपाक में समर्थ हुआ है।

वचनिका का प्रधान रस युद्ध-वीर है फिर भी रत्नसिंह अपने देश में दान-पुण्य करने के वर्णन से इसमें दानवीर का भी समावेश हो गया है। यथा—

जड़ तीरथ मंजि बीच जिणां चित
सपत थात धीरंथ सिलमी सह
बमने अस रैणा मुन्ही बह।

रत्नसिंह के बलिदान को धर्म-वीर के रूप में ग्रहण किया जा सकता है। उसने अपने स्वामी के प्राणों की रक्षा कर अपने प्राण दे दिये। स्वामी-धर्म का यह उच्च आदर्श है जिसका उसने पूर्ण निर्वाह किया है। इसी प्रकार रत्नसिंह की रानियों ने भी अपने पति के साथ सती होकर सती-धर्म का पालन किया है।

वीर रस के पश्चात् 'वचनिका' में दूसरा महत्वपूर्ण रस है 'शृंगार'। रत्नसिंह की मृत्यु के बाद रीति-कवियों के से नख शिख वर्णन के साथ 'शृंगार' के आयोजन को देख कर पाठक को आश्चर्य होता है। कटि सिंह नितम्ब-जंघा कदली बनिता सुख पूनम चन्द बदी मिग मू ह बप मणी आदि उक्तियों से रस-विरोध की भी शंका होने लगती है, परन्तु वास्तव मे ऐसा है नहीं।

'शृंगार' के इस आयोजन के पीछे क्षत्रिय नारी के आदर्श का आधार है। वीर-क्षत्रिय रानी की जन्मजन्मान्तर की यही साध रही है कि उसे वीर-पत्नी कहलाने का गर्व प्राप्त हो और उसे रण क्षेत्र में वीर-पति को प्राप्त अपने स्वामी के साथ सती होने का अलभ्य अवसर मिले। उसे जब यह अवसर मिलता है तब वह सोलह शृंगारों से सुसज्जित होकर अपने पति की जलती हुई चिता में प्रविष्ट हो जाती है। इसी दृष्टि से कवि ने यह शृंगार की अवतारणा की है।

यह अवश्य है कि इस 'शृंगार-वर्णन' में काम की कली नख चख चीज, विरह की बीज सुख की सिलाज पुणि खतिय गात बिन्हे पजर्य लाज लोक तजै विधि सति सजी आदि उक्तियों में रीति-कालीन शृंगार कवियों का सा इसकापन आ गया है।

इसे तत्कालीन काव्य-धारा का प्रभाव कहा जा सकता है। फिर भी कवि सजग है उसने इस वर्णन को अधिक नहीं खींचा है—नाटक के ४ छंदों में ही समाप्त कर दिया है। साथ ही उसने रानियों को 'कुलवंती' 'पतिव्रता' आदि कहा है और उन्हें सांसारिक भ्रम से दूर अपने हृदय में पति के ध्यान को धारण किये हुए चित्रित किया है। यथा—

"चिति आम सुराम सम्भरि चली
भ्रम मोह संसार तिमार भली।
निसिवा प्रिय सीस सके मरण "

अंत में 'कुरुक्ष' में रत्नसिंह और उसकी रानियों का संयोग दिखा कर-सूर रत्न सतियां मिलिया आइ महल्ल-संपूर्ण शृंगार-वर्णन को सार्थक कर दिया है।

इस प्रकार वीर-रस के साथ शृंगार की योजना कवि के प्रमाद का परिणाम न होकर सती-धर्म पर आधारित क्षत्रिय-परंपरा का प्रतीक है।

कवि ने सर्वत्र वीर भावना और क्षत्रिय-धर्म के आदर्शों से प्रेरित होकर रचना की है, अतः उसने मृत्यु, संसार-त्याग आदि पर करुण या शांत रस का प्रतिपादन नहीं किया है, फिर भी ऐसे स्थलों पर शोक और निर्वेद भाव स्वतः व्यक्त हो गये हैं। 'सती जमंमे सब दिसा मोह तमेंग्रित लोक से निर्वेद भाव-जन्य 'शांत-रस' की अभिव्यक्ति हुई है, तो हे हे कार पुकार हुए राम राम भणि राम द्वारा व्यंजित शोक की धारा 'करुण-रस' का प्रतिपादन करती हुई प्रतीत होती है।

युद्ध-वर्णन में कहीं कहीं वीभत्स चित्रण भी प्रस्तुत किये गये हैं। यथा—

(क) सत्या चंडि चार हुये बि-बि खण्ड
(ख) रक्तवानि नीर चिहुं कहिरान्।
खलाहलि आणि कि आइव खाव।
(ग) धंमां सप मांड निराट अनन्त
पडे बि-बि खंड पडे ऊडि पन्न।

वीभत्स के ये प्रसंग वीर-रस की पुष्टि के लिए ही आये हैं। अतः इनके समावेश से वीभत्स-रस की अवतारणा नहीं मानी जा सकती।

संभव होते हुए भी कवि ने अपनी रचना में भयानक और रौद्र रसों की सृष्टि करने का प्रयास नहीं किया है। अलबत्ता उसने अद्भुत-रस का नितांत ही सुन्दर परिपाक दिखाया है। विष्णु, ब्रह्मा इन्द्र आदि देवों का कथाक्रम में समावेश, विश्व कर्मा द्वारा निर्मित नगर का वर्णन देवताओं द्वारा आयोजित रत्नसिंह का अभिनन्दन समारोह और अंत में स्वर्गलोक में रत्नसिंह और उसकी रानियों का मिलाप सभी अद्भुत हैं।

वचनिका

राठौड रतनसिंघजी री महेसदासोतरी

भाषा शास्त्रीय अध्ययन

वचनिका की भाषा डिंगल है। इसमें डिंगल के प्राचीन और परवर्ती दोनों स्वरूप मिलित होते हैं। इसकी भाषा सम्बन्धी विशेषताओं का आकलन इस प्रकार किया जा सकता है—

१ संयुक्त व्यंजन के सरलीकरण की प्रवृत्ति है। यथा—विसन (विष्णु) नरेसुर (नरेश्वर) सरसती (सरस्वती), कमधज (कमध्वज) आदि।

संयुक्त व्यंजनों के परिवर्तन में सबसे महत्वपूर्ण अन्य व्यंजन+र तथा र+अन्य व्यंजन है। कहीं कहीं व्यंजन द्वित्व के साथ ही रेफ विपर्यय भी हो गया है। फलतः वचनिका में धर्म के परम परम्म एवं प्रम्म तीन प्रकार के रूप मिलते हैं।

२ प्राकृत अपभ्रंश की भांति व्यंजन द्वित्व की बहुलता मिलती है यह द्वित्वीकरण प्रायः अन्त्यांत में होता है। यथा—कम्म सह्र सह्र जाइम्म भोग्ग सुतम्म किरतम्म सुमति, करतम्म छवपति आदि।

३ छंद के अनुरोध से प्रायः लघु अक्षर को गुरु और गुरु अक्षर को लघु बना दिया गया है। लघु को गुरु बनाने के लिए अन्तर्वर्त—

(क) ह्रस्व-स्वर का दीर्घ कर दिया जाता है।

(ख) स्वर के साथ अनुस्वार जोड़ दिया जाता है।

(ग) व्यंजन को दुगुना कर दिया जाता है।

(घ) समास में भी द्वितीय शब्द के प्रथम व्यंजन का द्वित्व करने की प्रवृत्ति है। अनुस्वार के अनुनासीकरण की विधि काम में लाई जाती है।

ध्वनि-विचार

(क) प्रयुक्त ध्वनि

स्वर—

ह्रस्व-स्वर—अ आं इ उ ऐ ओ

दीर्घ-स्वर—आ ई ऊ ऐ औ औं

व्यंजन—

क ख ग घ ङ

च छ ज झ ञ

ट ठ ड ढ ण
त थ द ध न
प फ ब भ म
य र ल ळ व
स ह क्ष

टिप्पणी— आ' आ' का ह्रस्व रूप है। टेसीटोरी ने इसके लिए आ' चिह्न का प्रयोग किया है।

(ख) ध्वनि विकार

१ स्वर-विकार—

अ = इ – किवाड़ (कपाट)
इ = ऐ – हेम (हिम)
ओ = ऐ – केरव (कौरव)

२ व्यंजन विकार—

क = ग – ग्राहग (ग्राहक) तरवग (तरवक) मुगर (मुकुट) बालिग (बालक)
ख = ग – मुखीयन (मुखीयन)
ट = ड – वडिग (वटिग) महामड (महामट्ट)
ण = न – विसन (विष्णु) कन (कर्ण)
त = ग – पग्गाल (पाताल)
त = ध – भारध (भारत)
थ = ल – थामल (थामन) वीथाल (वीथल) थाणव (थानव)
प = फ – फरसि (पर्ष)
ब = म – कमन्ध (कबन्ध)
भ = ध – अवध (अवभ) बुध (बुद्ध) बारध (बारध)
य = इ – पाइक (पायक) रमाइण (रमायण) काइर (कायर) कपिराइ (कपिराय)
व = म – विमाह (विवाह) अमल (अवल)
व = ब – पूरब (पूर्व) अबाव (अवाव)
व = प – परमावत (परमावत) वाउ (वाव)
ह = घ – सिघ (सिंह)
ह = इ – नेहरी (नेहरी)
ष्य = ग – अपसरा (अप्सरा)

प्रसंयुक्त महाप्राण घोष और अघोष व्यंजनों का महाप्राणत्व ही शेष रह गया है। यथा—

घ रहा
थ पुहवि
ध : धसहर मेह
भ गहीर

रूप-विचार

जाति—संज्ञा शब्दों की दो ही जातियां हैं—(१) नर जाति और (२) नारी जाति। नर-जाति से नारी जाति बनाने के प्रत्यय ई' और इ' हैं। यथा—

इ'—सेठाइति कुलवंति

ई'—कहवाही देवडी इसडी तणी री, ऊंची

वचन—वचन दो हैं—(१) एक वचन और (२) बहुवचन। बहुवचन बनाने के लिए नर जातीय शब्दों में कोई प्रत्यय नहीं जुड़ता केवल ओकारांत शब्दों में 'आ' प्रत्यय जुड़ता है। यथा—बारलो (एक वचन) बारला (बहुवचन)—'वहे बारला बाणि आइस्य बाला।

नारी जातीय शब्दों को बहुवचन बनाने के लिए 'आं' प्रत्यय जुड़ता है। यथा—

एक वचन	बहु वचन
कहार	कहारां
महासती	महासतियां

बहु वचन बनाने के लिए 'इण' (सं वस्तु पर वस्तु) का भी प्रयोग हुआ है। यथा—

अनुसरण

कारक—

हिन्दी की भांति राजस्थानी में भी संज्ञा शब्दों के दो रूप होते हैं—१ विकारी और २ अविकारी। अविकारी रूप भूतकाल सकर्मक क्रिया को छोड़ कर शेष क्रियाओं के कर्ता कारक में प्रयुक्त होता है और विकारी रूप भूत कालिक सकर्मक क्रिया के कर्ता के रूप में प्रयुक्त होता है।

कारक रूपों के उदाहरण

कारक	एक वचन	बहु वचन
१ कर्ता		
अविकारी रूप	१ नारद मुख सीधा।	१ देव दानव सहि मुआ
	२ जीव जडाणि मिले मिर आयो।	

कारक	एक वचन	बहु वचन
	३ नाचै हारि गयन्दो ।	
	४ नदी सोखिजै नीर निम्माण नामा ।	
	५ फटै आम के आणि सामग्र फट्ट ।	
	६ पवन बाजसी ।	
	७ गज गैहर रिण गाजिसो ।	
र्ता		
गरी रूप		
उकासिक सकर्मक (प्रा का कर्ता)	१ रतन बुमाविसो जसै रवण रिण जंग ।	१ बहस्तां तुरां पाय पामाम बामा ।
	२ कर्वै मरण मनोरथ कीधा ।	२ हसीसां हिले सेप हसंती ।
	३ जांवडिये बडा राय माहे हुहा दिया ।	
	४ पर्वं पाहिजै बाट ओबाट पगे ।	

कारक	एक वचन	बहु वचन
२ कर्म		
अधिकारी	१ वपर्वै जसो चसाविसो कुल-मण्डण बवराण ।	१ बस बावन ताबीन है ।
	२ पांति रवी कीसर प्रीचाले ।	
	३ कवि रजपूत पोखिसा काले ।	
	+	+
विकारी रूप	१ मरण तणी सोनो है मोन्न ।	१ कमरां सू ठण्डी लापी ।
	२ सती उमने अम दिसा ।	२ अपजरां बरां
	३ मेघ बडा दिसी मल्लपिसो ।	३ बीर तीरां चलावे ।
	४ औरंग साहि दिसी आखो-दम ।	४ गिराई बिहे माठवां पांणिपज्जे ।
	५ टीमो राज बरा खल तात्र ।	५ बसां मरि खमोहरे खण्ड-खण्ड ।
३ करण	१ विधि मेणि मयो सन ।	१ खप माटां भंजण खत्री ।
	२ रवी थोम सू बिटिया	२ पातिसाहा री फौज

		गज्जराजे ।	सू सर्वा ।
		६ आते काम सू चालि सू मालिकु ।	३ हाथियां सू टसा बाहस्यां ।
		४ सांहे चालि सू बनावै कालसूता ।	
४	संप्रदान	१ सामि काजि मंचिये देहा ।	१ कवि सुरां कू ।
		२ सभे चालिग्रो सेम उज्जेणी साह ।	२ बड तीरथ मधि दीप जिसां जित ।
		३ कमनव राव तणां बतना कवि ।	
		४ महाराज मै सिर पेस करां ।	
५	अपादान	१ नदी हेम की मै चाली जांणी नीरं ।	१ सरीरां हुवां बच्च पिच्छाल सारे ।
		२ लसके पिरां मेर की नीरखनं ।	
		३ आतलोक थी सबलोक आहस्यां ।	
		४ आकास सू सोवनमय विमाण पिछी आवा ।	
		५ वैकुण्ठ सू लिखमी सहित------ ।	
		६ इन्द्रलोक सू तेतीस कोडि देवता ।	
		७ कविलास सू सिव बाहली चढी ।	
		८ हुसे मारि पाडे पंडी सोम हु तां ।	
		९ जसी हालिग्रो आपरा हुंतिम्यारां ।	
६	संबंध	१ लिमा बाहिरां अम्बरा सम्बन्धारां ।	१ राजवां पति राजत ।
		२ काहडी रा कलस ।	२ बागी बाबण वैणाजत सिरवारां-सरदार ।
		३ सती रा नायेर ।	३ देवां दरसि फरसि आहारे
		४ दिल्ली रा घर भारथ ।	४ कमन्धा बडा कूरिया साथि कीया ।
		५ सांडा री साट खडी ।	
		६ धणी री काम जिनी री धरम सांचवीजै ।	५. लोहां रा बीडू ।
			६ फौजां रा साहा ।
		७ पातिसां रै सब बाज बीजै ।	७ पातीसाहां री फौजां मडी ।
		८ आपरै पुत परिवार मै ।	८ बाण गोलां सरां री मारि

९. महेसदास का बाबा । ९ कीरतिया री कू बको ।
१० जल कमल हंस का बणाऊ । १० बाबा बरियामां तणां ।
११ सोरम्भकी महिरि । ११ बिरवर बब घाटांहू ।
१२ बहुती की बल बाहुतां । १२ ध्यान ध्यानहू मन धारे ।
१३ तुज्जर तणां गकर ।
१४ ताइ मिले बिबिल तणा ।
१५ रोस तणा कपिराइ ।
१६ तिणिवार बिगा रतनेस तणो ।
१७ बाप तणी डेरे बिरि आयो ।
१८ राणो रेसाग्रर तणो ।
१९. बिरमां बणे दुबची रेसनाबी ।
२० बल तिवार बो री बी ।
२१ बरबरण बाण ।
२२ बरम्हह मम्बपार ।
२३ बी भारबि बंका हुरी बिरमर बब घाटांहू ।
२४ हुलमन्त ज्यू बैला हुरी ।

---

७ अधिकरण

१ मावे ग्रारि बनबी । १ बैठि पजां मेवाडम्बर ।
२ इसि पंचि ओपे बहोरं ।
३ ब रबि बहुते बांडिबी
बाखब प्रसेदईब ।
४ कुब माण बरै प्रपञ्चो कमंध ।
५ तिका ती बाह साकाबन्ध
माइ सिरै चढी ।
६ हाथिया रै कु नावनी बाप खरां बनाबी ।
७ पडे बामिबां ऊंडि जेहा पतंग ।
८ तिमां माहि ऊजी बणे रेख तारं ।
९ रिण समन्ध माहे अति निहाज बरा ।
१० एह रतन बन्धि राडि ।
११ नावे उंडिमां बाणि हुही महलां ।
१२ पुबन्धि जिमां तोड पैकम्ब पूरा ।
१३ कराने हुमां हुक पै बाड कर्ता ।
१४ पूब बाप बिचि छडि पडां ।

५ संबोधन	१ बापड़ा बापड़ट	१ ऊकुरो। सबरंज रो ख्याल-पच्छिमी।
	२ माई हो माई।	
	३ बाप हो बाप।	

सर्वनाम

वचनिका में आये हुए सर्वनाम शब्दों के विभिन्न रूप इस प्रकार हैं—

प्रकार	मूल रूप		विकारी रूप		संबंधकारक रूप	
	एक व०	बहु व०	एक व०	बहु व०	एक व०	बहु व०
१ पुरुषवाचक (क) उत्तम पु०	हूं	+	मो मी मोनू	आपे	म्हारो म्हारे म्हाकू मो	आपणो
(ख) मध्यम पु०	तुम वें	+ +	तो तीनू	वां वें	+	वां
(ग) अन्य पु०	+	वां	ते तिका तिको ताह	तिमां त्यां त्यानू तिके	तासं	+
२ निजवाचक	+	आपा अप्प आप मिग्र	+	+	+	+
३ आदरवाचक	आप राजि	वें	+	वां	आपरे	+

प्रकार	मूल रूप		विकारी रूप		संबंधकारक रूप	
	एक व०	बहु व०	एक व०	बहु व०	एक व०	बहु व०
४ संकेत वाचक						
(क) निश्चय वा०	या सो	ये	इण अणि अस्सि तिस्सि तिण	तिणां त्यां त्यांनु	+ + + + +	+ + + + +
(ख) अनिश्चय वाचक	को कोई केई	केइक	+	+	+	+
(ग) नित्य वा०	सु	+	+	+	+	+
५ प्रश्न वा०	कुण	किणि कासू	+	+	+	+
६ संबंध वा०	जे +	जेणि	जिस्सि जिण जिहि जेहा	जेस्सि	जास जासु	जास जासू जिणां ज्यां जिको

क्रिया

क्रिया का रूप

काल एवं पुरुष	एक वचन	बहु वचन
वर्तमान तथा विधि काल प्रथम पुरुष	प्रत्यय—	प्रत्यय

काल एवं पुरुष | एक वचन | बहु वचन

उ–

बाबाणु कमधज्ज पुहविराजा सुजपती ।

आ–

१ पातिसाहां री फौजां सू लडां ।
२ पुलधारा विचि उडि पडां ।
३ महामारय करि मरां ।
४ रिण समन्ध माहई अति विसाज धरां ।
५ अपछरां वरां ।

मध्यम पुरुष

प्रत्यय–

औ–

१ बडा राव माहे बडा हुइ गवाडो ।
२ सूरां पूरां छित्रियां री बात सूणो ।

ऐ–

१ बखी री कमल तिनो र बरम सांचवीजै ।

अन्य पुरुष | प्रत्यय

ऐ–

१ सभै विकडां उतरै ।
२ मुख पूजै साहिबहां चला ।
३ नह मच्चे बीबाण ।
४ राति दीह अन्धर रहे ।
५ पुन्य हुवे सारी थए ।
६ पवै वाहिजे बाट औबाट पगे
७ बहन्ती हसी पन्थि औपै बहीरं ।

प्रत्यय

अ–

१ बहे बादला आणि आइन्धवाला
२ आरोहे घेरानियां ।
३ कुरा हुवे जिन्ध जीव ।
४ कवि बन्धे बीकार ।
५ हुवे सनाह सनाह ।
६ पटे ऊपटे मह थाए ।

काल एवं पुरुष	एक वचन	बहु वचन
भविष्यत्-काल		
उत्तम पुरुष	प्रत्यय- +	प्रत्यय- स्यां इस्यां १ एक पिमाला पीअस्या पाइस्यां । २ चाचर विहण्डिस्यां विहण्डाइस्यां । ३ पुण करिस्यां कैरव पाण्डव जिम । ४ बीजै भवि मिलस्यां---- ।
मध्य पुरुष	प्रत्यय- सी-इसी ऐसी १ बात रहिसी । २ तिण भी रहिसी राज रहेसी । ३ कमधां कोइ न बुरी कहेसी । ४ अवनि गाजसी । ५ पवन बाजसी । ६ --नवराज पुजसी । ७ हिन्दू असुपहण भजसी । ८ आपणी ही नेईक सुणसी ।	प्रत्यय- सी इसी देवता स्यावास कहिसी ।
भूत काल	प्रत्यय- सी- १ विधि मेरिए नयी सब कीति करे । २ सू कहिसी असपति । ३ पोती सार्थ परिहिसी ।	प्रत्यय- या या इया १ केविमां वन् टण्डस जैसि किया । २ --नवक पजिन्द्र दिया । ३ हिन्दू नाम हकारिया त्रिण असो जैसिय । ४ कै कै तरपस बन्धिया । ५ कैठा कै आलोच बहादर । ६ रवी भौम सू कीटिया नव्वराजे । ७ इहा माया मर सुलाया । ८ कै छत्रपति बहिसिया ।

काल एवं पुरुष	एक वचन	बहु वचन
इ स्त्री–		ग्रे–
१	मायै छत्र मण्डाडियो ।	१ सिलहां खाना ऊपरै ।
२	पू डसियो रज वैण ।	२ बणावै चणू स्याम छप ।
३	मो पां आडी मेल्हियो ।	३ पटै ऊपटै महाराज पटार्ग ।
	ई–(नारी-जाति में)	४ पर्ग छट्ट बल्ले मिर्र मज्जकाला ।
१	सीख रतन कीपी रख लाख ।	५ पर्ग छप्प पन्ती आपे हस्तकीजर्ग ।
२	ब्यारि कुन बचा रही ।	६ कुरुकां बचाकां तंतमाल लार्ग ।
३	वेद व्यास वाल्मीक कही ।	७ सीय चाहिए वीरपट्टा बादुर होमे ।
४	"ऊमी बगे रेख लार्ग ।	
५	" आइ सिरै चढी ।	
६	दुइ राह पातिसाहां री फौजां मडी ।	
	विशेष रूप—	
	ग्रे–पूजा करि डेरे पाधरे ।	

आज्ञा	प्रत्यय—
मध्यम पु०	स्त्री–
(आदर वाचक)	१ बडा राव माहे बडा दूहा गवाडो ।
	२ लोधन में महिमाइत पैदास करी ।
	३ सहर री नाम रतनपुर धरी ।
	ई—
	१ वैकुण्ठ वास दीजै ।
	२ इणि आइवा बारह दिन री मुक्त कीजै ।
	३ संपत धवल सेमाइवी कीजै ।

सयुक्त क्रिया

उदाहरण :

१ वेसा खनीस वंस बणाइ करि वैठा राजे पुर ।

२ महाराज मे आजवी नयुकर ।

३ जोद दिसी थिरि जाइरमां ।
४ ताहि जमे देवांण ।
५ पूत्र वाधां विधि उहि पडां ।
६ गढ वैठि लिखी ।
७ हुइ वेठी पतिसाह ।
८ गजाइ कही ।
९. विरतां लाधी वरसवा ।
१० रिठ वसंत थिरि पूलि रही ।
११ वीठोहीच वणि आवै ।

प्रेरणार्थक क्रिया के प्रत्यय—

प्रेरणार्थक क्रिया बनाने के लिये निम्नलिखित प्रत्यय प्रयुक्त हुए हैं :—

आइ :

१ वडा राय माहे वडा हुइ पवाडी ।
२. वैर कलेव वधाडी ।
३ आवी दल ऊभाडी ।
४ विरवै क्यां भमाडिमा ।
५ तमे म्हारि उपाडि वैसा वइठे ।
६ गढां पाडि वे आडि पीछाडि गइठे ।

आर

१ वंडां धारि वैताडिमा नीठ वजइं ।

आव :

१ विरावे जिके आंमणां पाडि गजइं ।
२ वर्णन कमकरण मीहरव वेहा ।
३ करावे हुमां ढूक पै आइ कती ।
४ धणी चढावे ऊर ।
५ करावे मेघ वडा वाज चमक ।

धातु के उपान्त्य स्वर को दीर्घ करके भी प्रेरणार्थक रूप बनाये जाते हैं—

१ ओखी काडी ।
२ अवराण काडी ।
३ नरे मारि पाडी जिके ग्रमिमाडं ।
४ हणी मारि पाडे पैडी मोम हूंता ।

कृदन्त

१ पूर्वकालिक कृदन्त

प्रत्यय—

इ—

१ सुमरि विसम सिव सगति ।

२ गुरुदेव सगति समापि गुणं ।

३ चढि सीष बलवक धरा ।

४ रचि कीनै दिन राति ।

५ सूजा विधि जेविध सधि ।

६ सिरि परि धरि मुझां सुकर ।

७ करि अंन पान सिनान महाविध ।

८ हेकां हसति-करति जाइ द्वारे ।

९ रतन मुझां कर भाति बोने ।

१० पंडां मारिवैसारिमा नीठ बरन ।

ये—

१ ऊभे पाखरां जमरां बूह काला ।

२ कमधज्ज वणैमिरि राज करै ।

३ " जप कीति करै ।

४ दिवा नमारा देत दे ।

५ बलकावन ठावीन दे ।

६ मायां छडे सनेण ।

२. हेतु कृदन्त

प्रत्यय—

अण—

१ बन्धव रतन मुनाविमो जमे रचण रिणु जंन ।

२ पुप मचण जमजान ।

३ लख दिवण ।

४ जस लिवण ।

इया—

१ करिया भारय बरन ।

धेरा—

१ करेवा महासूर भारथ कर्त्त ।
२ मरेवा करै कोड भारथ मर्त्त ।

३. वर्तमान विशेषण कृदन्त
प्रत्यय—

वंत (मारि० — वंती)

१ वहन्ती इसी पंथि सीपै वहीर ।
२ पडन्ता दिसे आम खन्धा प्रचण्ड ।
३ मरन्ता न मारै महाजुध मामा ।

४ भूत विशेषण कृदन्त
प्रत्यय—

इया—

१ तुहै छाडिया काम सू आण लगे ।

५. कर्तृवाचक कृदन्त :
प्रत्यय—

अण—

१ दाण हुण विमण ।
२ पवपाज दिमण ।
३ तारण जिके पवन ।
४ मारंण वजां ।

तद्धित प्रत्यय
हार—

१ वासठि हजार पीवां रा भंजणहार ।
२ मैमन्त हाथियां रा मारणहार ।
३ पतिसाहा रा विमाडणहार ।

वाला—

१ कपे पाहरां चम्मरां सुह काला ।
वसै जाणि पाहाड हेमंत वाला ।
२ वहे वादला जाणि भाडवावाला ।
३ वहै कपटां वहु राठौड वाला ।

कृदन्त

१ पूर्वकालिक कृदन्त

प्रत्यय—

इ—

१ सुमरि विसन सिव समति ।

२ गुरुदेव समति समापि गुणं ।

३ चढि सीस बलबक बरा ।

४ रचि बीजे दिन राति ।

५ सूजा विधि वेसिव सधि ।

६ सिरि परि धरि मुक्ता सुकर ।

७ करि बंध पाल विमान महाछिव ।

८ देवां वरसि-करसि बाह हारे ।

९. रतन मुक्ता कर भाति बीजे ।

१० बंदां मारिवैसारिमा मीठ वरग ।

ऐ—

१ कसे पालवां जम्मरां चूह काला ।

२ कमवरज कणेगिरि राज करे ।

३ ...सव कीति करे ।

४ दिया बचारा देस दे ।

५ दसचावल ताबीन दे ।

६ प्रावा लडे उमेण ।

२. हेतु कृदन्त :

प्रत्यय—

अण—

१ वग्गव रतन बुसाविद्रो जमे रमण रिण जंग ।

२ सुप मण्डण जमजाल ।

३ जस दिमण ।

४ बस सिमण ।

इवा—

१ करिवा मारण कस ।

यथा—

१ करेवा महामूर भारथ कत्थं ।

२ मरेवा करे कोड भारथ मन्नं ।

३. वर्तमान विशेषण कृदन्त

प्रत्यय—

वंत (मारी० — वंती)

१ वहन्ती इसी पंथि थोपै वहीरं ।

२ पडन्ता विसे भाव कम्मा प्रचन्डं ।

३ मरन्ता न वारै महादुष मन्ता ।

४ भूत विशेषण कृदन्त

प्रत्यय—

इया—

४ वे वे तरमस वन्निया तुरकी रखवालां तुरक ।

५ बुधिवल वाला ज्याय ज्यू ।

आल—

१ रवि फीकां रौशाल ।

२. बारख किर करताल ।

३ उडी रवी छायी अरस किय भांखी किरणाल ।

४ कुपयम्बरण कमजाल ।

५ वे भाई विरवाल ।

६ डाकी जमदाडाल ।

अस—

१ पुवानल ।

आली—

१ काली वसां किवांड ।

२ काली अनुमाली किधी ।

३ श्री वाली सुजाली, छवाली ।

४ हुआ कमधज्ज हुवाला ।

आण—

१ इकडी जोधाण ऊजलां कर्यां ।

२ हिंदुआण तिलक हिन्दू विहूव ।

हरी—

१ वैतहरी करि वंग ।

अव्यय

(क) क्रिया विशेषण

(अ) काल वाचक

अई—जालौर पटे यह दीय अई ।

अब—जसवंत औरंग साहअब ।

आर } अब —जयजय जोयसि किय अिआर ।
ज्यारां } —
—जसवंत रिम जीसिओं ज्यारां ।

आम—पूटा रतनागिर औरंग आम ।

जिणिवार—वार तणै भरि सोहिमो जीयो ही जिणिवार।
तई—टगटमी सभी तई।

ताम
त्यारं
त्यारां
तिवारां
तई
} तब —ताम रमण तेडियो मिमै तण।
—त्रिलोक कोतिग देखतं त्यारं।
—तण माहेस मन्न की त्यारां।
—तेडि माहेस तिवारां।
—सनमान करे सुरतान तई।

(ब) स्थान-वाचक

तहै—तहै बंधोज किमी ही न सै।
मायसि—सोनपिरी मायसि सलक्खा।

मागे—
पीछे—
} —मागे पीछे माव।

मग्गे—मरणवां रिवावां किमा पट्ट मग्गे।
ज्यां-जहां—ज्यां सहिवारां बोर।

उप्परै
ऊपरै
} ऊपर —पवे उप्परै बणि फूले पलासं।
—उलटिमा इल ऊपरै।

कन्हे
पौंहे
} के पास—करनावत मणवर कन्हे।
—सुजावत पौंहे मक्कर सक्कि।

पारवती—गत—पडि मु ६ कमवां पारवती।
चौसठ—चारों धोर—चौसठा चंवर ढुलै छै।

दिसा
दिसि
दिसो
} धोर —सती जमग्गे सिग दिसा।
—सुजा दिसि जैसिव सक्कि।
—मारंपसाहि दिसो मालो इम।

बाहिर —मामा बाहिर सेम।

विचि
विचे
विचाम
} बीच में—गोल विचे सिरसारे।
—विचि मंडे पंड मंडे बडा।
—किमी व्योम विचामे व्योम।

४ वै वै तरगस बन्धिया तुरकी खुवासां तुरक ।

५ कुबिठम बाला ज्याय जमू ।

प्राम—

१ रवि फौजां रीझास ।

२. बादव फिर करसास ।

३ खडी रजी छायी अरस किय भांती किरसास ।

४ बुधमध्यरा बमजास ।

५ वै नाई किरवास ।

६ बाकी बमवाकास ।

ग्रस—

१ बुधावन् ।

प्राली—

१ कवी बसां किवांड ।

२ कवी बसुमासी किवी ।

३ प्री बाली बुवाली खवाली ।

४ हुआ कमधम्म हुवाला ।

प्राण—

१ बपडी बोधाण ऊवसां कर्यां ।

२ हिंदुपाण तिलक हिन्दू विहद ।

हरी—

१ बेतहरी करि जंग ।

अव्यय

(क) क्रिया विशेषण

(अ) काल वाचक

जई—जालोर पटे यह बीध जई ।

जब—जसवंत धीरंग साहजब ।

मार } जब —जमज्जम बीपणि किव जिमार ।
ब्यारां } —जसवंत प्रेम बोलियों ब्यारां ।

जाम—कूटा रतनागिर धीरंग जाम ।

जिणिवार—धार तणै भरि सोहिमो जीमो ही जिणिवार ।
तई—टगटणी सभी तई ।

थाम
त्यारं
त्यारं
तिथारं
तई } तब —थाम रमण तैडियो निमै तण ।
—त्रिलोक कौतिग देखतं त्यारं ।
—तण माहेस मग्ग की त्यारं ।
—तेडि माहेस तिथारा ।
—सनमान करै सुरतान तई ।

(घ) स्थान-वाचक

तहै—तहै बंधोज किधी ही ज सै ।
मापति—सोनगिरी मापति सलक्खां ।

मागे—
पीछे— } —मागे पीछे माव ।

मग्गे—मग्गां रिवाजां किया वट्ट मग्गे ।
ज्यां-जहां—ज्यां सहिजाजां सोर ।

उप्परे
ऊपरे } ऊपर — —पवे उप्परै वणि फूले पलासं ।
—उलटिया इस ऊपरे ।

कन्हे
पीछे } के पास— —करनावत मणवर कन्हे ।
—सुजावत पीछे नक्कर सम्मि ।

पारवती—गाह—पहि मु इ कमवां पारवती ।
चौसठ—चारों धीर—चौसठ चंवर हुवै सै ।

दिसा
दिसि
दिसी } धीर —सती समगो जिम दिसा ।
—सुजा दिसि जैसिंघ सम्मि ।
—मारंबसाहि दिसी माखी इस ।

बाहिर —माया बाहिर मेम ।

विचि
विचे
विचास } बीच में—बीस विचे सिरदारे ।
—दिवी ब्यीम विचाले ब्यीम ।

साम्हां } —उठै सर साम्हां धसत ।
साम्हीं } सामने—आगे मुरजिय साम्हीं आई ।
सामुहा } —सैन उमेणी सामुहा ।

पुठि—पीछे —वेडा पुठि चंवोस विचारै ।

नेडा—पास —वस आवा नेडा ।

स) परित्राण वाचक

निपट —निपट विन्हे वस आवा नेडा ।

जितरो —रवि जितरो कुण वाणै ।

(द) रीति-वाचक

ज्यू—जैसे —पाण्डव ज्यू पतिसाह ।

यूं } —यूं वाले उमराउ रवि जितरो कुण वाणै ।
ईम } वीं —
—वडै सिर व्योम कमंधज ईम ।

सेम } —सगे वालिमो सैम उग्वणि साक ।
सेमि } —माया कहिमो सेमि ।
केमि } —कहो वाणस्यं केमि ।

सेम —वावे वावे अपछरा जय आवन वहि-सैम ।

सेमि —सुवपति सेमि रतंन मण ।

सेही —अंगम्मं पसम्मं सुसमस्त सेही ।

(ख) संबंध बोधक विशेषण

सगै—सक —साहि सगै वे वाण

कवि } —कमधज राउ तणां अतनां कवि ।
काज } के लिए—
—करण मरण पह काज ।

ही —सती ही वावै ।

प्रति } —दीवी राज परा छल छोडू ।
प्रति } के लिए—
—असर्वत प्रति माने पुहवि ।

साक —सगे वालिमो सेम उग्वणि साक ।

(ग) सयोजक

क्रिया-अवधा—क्रिया संक्षपति कुम्भेण कहीजै ।

किर } —बादल किर बरसाव ।
} मानो
किरि } —किरि दुज्जोण करंत ।

अनै } —सुणइ अनै पंडिताइ ।
} और
अर } —बाया अर सुलाया ।

के-अवधा —कटो आम के बाणि सार्थद कह ।

विण —विण जी महाभारत री आयल ।

तो —तिका तो बात आव ।

तौ —तौ वेकुण्ठ चढिवै ।

(घ) विस्मयादि बोधक

बाप हो बाप—बाप हो बाप ।

वाह वाह —वाह वाह वाघ्रजी नवी कही ।

विशेषण

(क) सादृश्यवाचक विशेषण ।

तिसी —तन रंभह संभ कनक तिसी ।

वेहा —वलि वेहा चकनै हुआ जिस वंश गरेहुर ।

वैसी —वैसी वरवसी वैसी अपछरा ।

वेही —वंगमर्म पसम्मं मुखमस्त वेही ।

वैसा —जसराज वैसा कमेसर ।

जिसा —जिसा योवरपन अनंड ।

जिसी —रिस रामाइस जिसी रचावां ।

वैसा —वसा रोल वेसाल वैसा दुवेर्म ।

वैसी —वैसी वरवसी वैसी अपछरा ।

(ख) सार्वनामिक विशेषण

इसी —बहुंसी इसी पंचि बीपे बहीरं ।

इसा —बलंता इसा मीर तीरां बलाने ।

इसे —आजै इसे विनाणि ।

इसडी —इसडी बंह री आवणि आत ।

कैसा —सभा बप कैसा ।

किसडी —किसडी ही क बीसै ।

किहडी —कुचवंति पतीवरता किहडी ।

शेष सर्वनामों का परिचय सर्वनामों के अन्तर्गत दिया ही जा चुका है ।

(ग) संख्या-वाचक विशेषण

गणना बोधक—

अेक —अेक बसी बण बग ।

अेकणि —अेकणि चोट बताय ।

दे —दे भाई विरवाल ।

दि-दि —दि-दि सणां चढि बार हुमे दि-दि सब्द ।

तीन —तीन पीहर हाडू के महाराज जसराज ही लडै ।

त्रिण्ह —ब्यारि राणी त्रिण्ह लवाणि ।

दुर —बर हर दुर दुवले विया ।

चव —चवबाहु साह बीच राहु चढि ।

च्यारि —च्यारि राणी त्रिण्ह लवाण ।

पंच —इन्ही पंच बी पे महामुर बेहा ।

छट —छट आठ बाण ।

छह —छह रित मच रस निवरि आवै ।

छ —छ सब्द मुरसाण ।

सात —सात समंद विर आठ ।

सपत —छत्तीस रागणी सपत सुर ।

सुरचव —जलनिधि सुरचव जाणि ।

आठ —आठ असुर गज अेक ।

—आठ लाखिव माला ।

नव —छपां मारि हंदे जिके नव खंड ।
बारह —बारह वरस मु हुवा आये निरकाय करै ।
तेरह —सिणगार तेरह सबब ।
सोल —सोल सिंगार वणी ।
सोलह —सोलह सिंगार रंग प्रेम का मढ ।
छतीस —सर तेरह छतीस ।
बीस —छतीसं हुए बीस टंकी कवाणं ।
तेतीस —तेतीस कोडि देवता ।
छतीस —छतीस वंस हिन्दू सरजीत करि ।
छतीस —छतीस वाजिब वाजै सै ।
छतीस —मेता वंस छतीस ।
बीससै —कवै अठवं बीस-सै पुजम कवयं ।
बावन —बोसठि जोगणी बावन वीर ।
बासठि —बासठि हजार फौजां रा अंब बहार ।
बोसठि —बोसठि जोगणी बावन वीर ।
असी —असी वम आठ वसा सब अंग ।
चोरासी —चोरासी सिद्ध विद्यमान हुआ है ।
आथी —अमे आथि आथी निसा अंधकार ।
आथी —आथी वस ऊजाडि ।
सवाया —पवा सवाया कलाणिया ।
लक्ख —वस लाखस लक्ख नजेन्द्र दिया ।
लाख —लाख लाख रा लाखीक ।
कोडि —तेतीस कोडि ।

(घ) क्रम-बोधक

दुज्जो —कहिजो वो दुज्जो करण ।
दूसरी —दूसरी मधुकर ।
बीजा —बीजा मा साथे वस सबल ।
बीजे —बीजे दिन रवि राहि ।
तीसरी —वो तीसरी महाभारथ ।

चौथा —चौथा पौहर लागा ।

सातमे —पन सातमे पवाडि ।

पनरोत्तर —पनरोत्तरै बरसि ।

(ङ) समूह वाचक विशेषण

दुह —तुम सिरहर दुह राह ।

दुवे —दुवे फौज फत्ह गिरं गरज बाणे ।

बिहुं —साहिजादा बिहुं सांमुहो ।

बिहां —मार्यो साहिजादा बिहां सम माह ।

बिन्हे —निपट बिन्हे फौज फौजां बणी चमा हां ।

बेवे —बेवे अपरिव ।

बेहु —चंद सूरजि बेहु जवाबी करै छै ।

बिन्हे —बिन्हे लीक ।

दसो —घोडा चढि दसो दिसि चाली ।

हजारां —हजारां मुहां बाणि बहे बीर हक्कं ।

समास

वचनिका में समास भी पर्याप्त संख्या में प्रयुक्त हैं—ये दो-दो शब्दों के हैं ।

यथा—

तत्पुरुष—वन्न गज-पति हस्तिमार घोडाण-पति चम-रद घोडा-धणी, दल सिणगार सुध-बन्ध भुज-बलि, छ-खण्ड गज-बन्ध गज राज रिण-खेत रिण-समंद प्रवसाण-सिद्ध दसा-रोल आदि ।

समास-रचना में कहीं कहीं विपर्यय भी हो गया है । यथा—

पति दिल्ली पति-जवन सुन-हेम पिरांमर आदि ।

शब्द-कोश

वचनिका के शब्द-कोश में संस्कृत के तत्सम अर्ध-तत्सम एवं तद्भव शब्द विदेशी (अरबी फारसी) शब्द और देशज के अपने विशेष शब्द परिलक्षित होते हैं । इसमें अनुरणात्मक शब्द का प्रयोग भी हुआ है । विभिन्न प्रकार के शब्दों के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

१ तत्सम-शब्द

कवि कमल कीडा कण कटक दल देव तेज तप वचन पतिव्रता पूजा मनोरथ मानसरोवर विधि वेद-व्यास वैकुण्ठ विष नीर नर रूप सूर, गजराज सुख जल, गजराज इन्द्र उत्तम आचार, अपार, नीरनिधीर आदि ।

२. अर्द्ध-तत्सम

अव तरयस तुरी, ग्राम रथ बोम वामिस्र पुणीग्रस, रिमि-सिमि सूर त्रित इव अस-मिय, ब्रह्मंड गिर, वामिण सावुस, सामव कुरुक्षेत्र अर्पाति अवसोक आतसोक आदि।

३. तद्भव

अपसरा, महल बडाऊ, बैल परसे पांति पोखिया ग्याव, माण अमरै पखी दूध, नेवा, छेहा, समन्द समहर सरिस विसन, किसन पयन्द, इन्द, मद, सामि बैठ आदि।

४. विदेशी-शब्द

मरस, मरज कूब कहर, बकर खुदा अवाब तरफ, दीवान बाजार सहर (सहर) जिहाज (जहाज) फुरमाण (फरमान) सोर (शोर) बहादूर (बहादुर) हिमहखाना जंग दुआ नेवा हूर, बर, बिस पुरजा पैस (पेश) हाह हजार आदि।

अनुरणात्मक शब्द

कलम् कडकड अवसरै आटकरी गडगड अमगम वर्मका भटभटी बडबड, पडहि बडबड बडबड रमरमरम इमतमी सम्रसमि अडमडण।

६. डिंगल भाषा में प्रयुक्त कुछ विशेष शब्द

अवाहि, आडुआसी अडबड अणवंस, अणमोह, अखी, अनड अनमन्य अवसीयाण अरडिय अरिसाल, अवकड आडवी आलीफरै, आपमसी उजरसी, ओरकसी, ओमाड, कटुके कसमसणी किसक कोरंभ खसखी खतंप, खीम खडूचड गरट्ट गाहसी गुडबसी, गोस गडवाल चमाहरी चडचंड चन्दीस चापडी चोरंप, छल छेलि जमजेठ जरीकी, जावंसि जड जडाल जीस डम्बर तिवारी, दुम्बल, दोसी धर्मका धाराल धूसणी निपंग पडै पडताल पडिपाहुण, पारवती, प्रीयासी बटकी बीह, भलभाट भमभोट मडबसणी मारी, रडरांण, रहिल रहिहल वानैत विपू सखी विरोल वधासी वाको सूबसी सूरमी हुवासी, हाम हुकम हलस हीमसी आदि।

गाडण सिवदास एवं बिडिया जगा

तुलनात्मक अध्ययन

राजस्थानी का पद्य साहित्य जितना परिमाजित प्रौढ़, वैविध्य-पूर्ण विविध शैली संपन्न एवं विस्तृत है, उतना ही इसका गद्य-साहित्य भी। विक्रम की १४ वी शती तक आते-आते हमें राजस्थानी गद्य के प्रबंध दर्शन होने लगते हैं, जिसकी परम्परा आज तक किसी न किसी रूप में अक्षुण्ण बनी हुई है।

राजस्थानी-गद्य के रचयिताओं ने धर्म दर्शन इतिहास, गणित ज्योतिष वैद्यक टीका-टिप्पण, अनुवाद आदि सभी को अपना विषय बनाया है। लोकरंजनकारी मनोविनोद बातों ख्यातों आदि में तो राजस्थानी-गद्य सतत विकसमान रहा है। इसकी प्रारंभिक कृतियां जहां हमें हिन्दी की अभिव्यक्ति-प्रणाली शब्द-संगठन विन्यास आदि को समझने में सहायक हैं वहीं इसके विकास-काल की कृतियां आधी हिन्दी-गद्य के स्वरूप एवं उसके विकास-पथ की दिशा-संकेत देती हुई प्रतीत होती हैं।

राजस्थानी गद्य-धारा का जो विकासोन्मुखी प्रवाह अचलदास खीची री वचनिका में हस्यमान है वह दो-ढाई शताब्दियों तक गद्य-काव्य-धारा को अभिसिंचित करता हुआ 'रा० रतनसिंघजी महेसदासोत री वचनिका' में अपने पूरे ओज उत्कर्ष के साथ प्रकट हुआ है—वीरों का दर्पोक्तियों में गुंजायमान हो कर शब्दों की टंकारों में बजता हुआ सतीत्व की स्वर्णावलोकनी आंख में करुणा-जल बन कर जातीय आदर्शों की रक्षार्थ बली होने वाले शौर्य मूर्त क्षत्रियों के चरणों में श्रद्धांजली स्वरूप पड़ गया है।

गाडण सिवदास और बिडिया जगा चारणी-वाग्धारा-निर्मित राजस्थानी के लोकप्रिय साहित्य-सृजक हैं—उनकी कृतियां क्षत्रियों के जातीय अभिलेखों के रूप में समादृत रही हैं। एकाधिक दृष्टि-बिन्दुओं में ये दोनों रचयिता समान धरातल पर अवस्थित गोचर होते हैं।

दोनों वचनिका कारों के विषय में किंवदंतियां प्रचलित हैं कि वे अपने-अपने आश्रयदाताओं के साथ रण में जूझ जाते मात्र अपने स्वामियों बलि-जीवन स्तम्भ पर काव्य रूप कीर्ति-कलश चढ़ाकर उनको अमरत्व प्रदान करने हेतु जीवित रह गये थे। दोनों रचयिताओं का लक्ष्य अपने वीर-आश्रयदाताओं का कीर्ति-स्तवन ही है।

दोनों की काव्य प्रतिभा इतिहास वीथिकाओं में रमण करती हुई जहां एक ओर काव्य रसिकों में ब्रह्मानन्दानुभूति का संचार करती हुई आर्य-धर्म और संस्कृति का

ज्योति मंद पड़ जाती है वहीं दूसरी ओर तथ्यान्वेषी इतिहासकार को तमसाच्छन्न विभु खल ऐतिहासिक कड़ियों को जोड़ने का सामर्थ्य भी प्रदान करती हैं ।

राजस्थानी वीर-काव्य-परम्पराओं से समृद्ध दोनों रचनाएं युद्ध-काव्य हैं जिनमें न केवल स्वराज्य का बल प्रकाश, और ओज वर्णित-व्यंजित हुए हैं अपितु विरोधी पक्ष के शक्ति-सामर्थ्य आदि का भी विस्तृत वर्णन हुआ है। इस दृष्टि से दोनों ही वर्णन प्रधान रचनाएं हैं। युद्ध के पूर्व वीर नायक द्वारा स्वपक्षीय योद्धाओं से अभिमंत्रणा का आयोजन, उत्तेजित परस्परापुर वीरों का अनुभाव-चित्रण, जौहर प्रज्वलन एवं अंत में नायक की प्राणाहुति के दृश्य दोनों में ही समान रूप चित्रित हुए हैं। इस प्रकार दोनों वचनिकाएं उत्कृष्ट वीर-काव्य हैं—दोनों का अंगीरस 'वीर' है। करुण रस के छींटे दो एक स्थल पर दोनों रचनाओं में हैं जिनके स्पर्शानुभव से सहृदय की पलकें भीग जाती हैं।

न केवल भाव भूमि की दृष्टि से अपितु शैली-स्वरूप अथवा रचना शिल्प के विचार से भी दोनों वचनिकाकार एक ही मार्ग का अनुसरण करते हुए चले हैं। वचनिका-शैली में रचित राजस्थानी कथात्मक गद्य की धूप-छांह में मुक्तक-काव्य सौरभ से दोनों रचनाओं के पृष्ठ सुवासित हैं।

बारण सिंघवाल अपेक्षाकृत पूर्ववर्ती कवि है—फिर भी उसकी प्रतिभा ने दो शताब्दियों बाद रचना करने वाले समर्थ कवि जया लिखिया को दूर तक प्रभावित किया है। यह मान्य है कि दोनों वचनिकाओं के इतने अधिक साम्य का कारण दोनों निबोधित एक ही ऐतिहासिक घटनाएं हैं, फिर भी अपनी रचना शैली के लिए जया निश्चित ही सिंघवाल का ऋणी है। इतना स्वीकार करने पर भी जया पर सिंघवाल का अंधानुकरण करने का दोषारोपण नहीं किया जा सकता। सिंघवाल की रचना से जया के प्रस्थान भेद का निरूपण इस प्रकार किया जा सकता है—

जया की रचना भाव-संकुल होते हुए भी वर्णन-प्रधान है। सिंघवाल में अपेक्षाकृत भाव प्रधान है।

विविध वर्णनों से जया की वचनिका के कथा-रस में स्वाभाविक निखार आ गया है यद्यपि इन वर्णनों से कथा प्रवाह में थोड़ा विराम अवश्य आया है। सिंघवाल की वचनिका में कथा-चमत्कार का एक दम अभाव है—उसकी कथा में किसी प्रकार का कोई अवरोध नहीं है।

जया ने वीर के साथ ही शृंगार रस का भी वर्णन किया है, जिस पर स्पष्ट ही रीति-कालीन प्रभाव है—सिंघवाल की वचनिका में शृंगार रस का नाम भी नहीं है—हां करुणा के प्रसंग दोनों में हैं।

रत्नसिंह की मृत्यु के पश्चात स्वर्ग में उसके अभिनन्दन आदि का सविस्तार वर्णन करके जगा ने अपनी वचनिका मे काल्पनिक अंश का समावेश कर दिया है। सिवदास ने यथार्थ को ही ग्रहण किया है।

जगा एक कलाकार कवि है। उसकी वचनिका का भाव-पक्ष जितना मधुर है उतना ही उसका कला-पक्ष भी उज्ज्वल है। उसका अंग भी काव्य सा रम्य और रोचक है। इसके विपरीत सिवदास नैसर्गिक भावना का सरल कवि है यद्यपि उसकी कविता का कलापक्ष किसी भी प्रकार से हेय नहीं है फिर भी उसने उसे सजाने की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम यही कह सकते हैं कि दोनों कवि समान भाव भूमि पर समान-श्रेणी में रखना करके भी पृथक-पृथक महत्व के अधिकारी हैं। तुलना द्वारा एक को दूसरे से बड़ा या छोटा कवि सिद्ध नहीं किया जा सकता। इस अवसर पर इतना ही कहा जा सकता है कि सिवदास द्वारा निरूपित राजस्थानी की वचनिका शैली जगा के हाथों में पड़ कर विकासोन्मुख ही हुई है।

परिशिष्ट २

टीका-व्याख्या के रूप में लिखित जैन वचनिकाएं ।

१ जोधराजजी गोदिका–सांगानेर निवासी

१ भावदीप वचनिका ।

२. टोडरमल-जन्म सं० १७९३ ।

२ रहस्यपूर्ण की वचनिका ।

३ आत्मानुशासन वचनिका–यह ग्रन्थ भर्तृहरि के वैराग्य शतक के रूप का है ।

४ पुरुषार्थ सिद्धुपाय की वचनिका जिसे पं० दौलतराम ने पूर्ण किया ।

३ दौलतराम, बसवामाम निवासी–जो अनुमानतः सं० १८३० वि० तक विद्यमान थे ।

५ हरिवंश पुराण (१८२६) की वचनिका ।

६ पुण्यास्रव वचनिका (१७७७) ।

७ परमात्म प्रकाश वचनिका ।

८ श्रीपाल चरित वचनिका ।

९. वसुनंदि श्रावकाचार (प्राकृत) की वचनिका ।

४ मन्नालालजी सांगा–जन्म सं० १८३६

१० चरित्रसार की वचनिका (माघ शु० ५ सं० १८७१ में पूर्ण) ।

११ पद्मपुराण की वचनिका (अपूर्ण) ।

५. केसरी सिंहजी

१२ वर्द्धमान पुराण वचनिका (१८७१) ।

६ देवीदासजी

१३ सिद्धांतसार संग्रह वचनिका

१४ तत्वार्थ सूत्र वचनिका । } सं० १८४४ ।

७ जयचन्द्रजी छावड़ा–जयपुर

१५. प्रमेय रत्नमाला की वचनिका (१८६६) ।

८ बखतरामजी–१९वीं शताब्दी के अंत में विद्यमान थे

१६ धर्म बुद्धि कथा वचनिका ।

१७ मिथ्यात्व खण्डन नाटक वचनिका ।

९. शिवलालजी जयपुर निवासी

१८ रत्न संग्रह वचनिका।

१९. चर्चा संग्रह वचनिका।

२० नव चक्र वचनिका।

२१ उमास्वामी कृत श्रावकाचार वचनिका।

२२ तेरह पंथ खंडन और दयानसार वचनिका (सं० १९१२)

१० नाथूरामजी दोसी-जयपुर निवासी जन्म १९वी शती उत्तरार्द्ध मृ० सं० १९०५

२३ सुकुमाल चरित्र वचनिका।

२४ नवचक्र वचनिका।

२५ षोडश कारण जयमाल वचनिका।

२६ दश लक्षण रत्नत्रय जयमाल वचनिका।

२७ जम्बोदक अष्टाह्निका कथा वचनिका।

२८ समाधि रत्न वचनिका।

११ सदासुख जयपुर निवासी जन्म १८५२ मृ० सं० १९२३

२९ अकलंकाष्टक वचनिका।

३ मूल सहस्रनाम वचनिका।

३१ समय सार वचनिका।

१२ पारसदासजी निगोत्या-जयपुर मृत्यु सं० १९३६

३२ सार चतुर्विंशतिका वचनिका।

१३ दीपचन्द-आमेर

३३ अनुभव प्रकाश वचनिका।

१४ पन्नालाल सिंघी-जन्म सं० १८७१ मृत्यु ज्येष्ठ कृष्णा १० सं० १९४०।

३४ तत्वार्थ सूत्र वचनिका।

१५. फतहलालजी जयपुर

३५ त्याग दीपिका और तत्वार्थसूत्र की वचनिकाएँ।

१६ स्वरूपचन्द बिलाला

३६ मदन पराजय वचनिका (सं० १९१८)।

१७ रायमल्लजी

३७ चरचा ग्रंथ वचनिका।

३८ श्रावकाचार वचनिका।

१८ चौधरी लाल शाह : रचना काल सं० १६१५

३९ सेमेर शिखर पूजा वचनिका ।

४० पद्मनंदी पंचविंशतिका वचनिका ।

१९ नन्दलाल छाबड़ा

४१ नंदा मुक्तावार की वचनिका ।

२० अमरचन्द्रलाल छाबड़ा

४२ भक्तामर स्तोत्रवचनिका ।

२७ रूपचन्द

४३ समयसार वचनिका ।

इनके अतिरिक्त श्री मेमीचन्द शास्त्री ने अपने ग्रंथ 'हिन्दी जैन-साहित्य परिशीलन' भाग २ पृ २१२ १४ पर कुछ और वचनिकाओं के नाम गिनाए हैं ।

सहायक ग्रन्थ सूची

१ अपभ्रंश-साहित्य — डा० हरिवंश कोछड़
२ किसन रुक्मणी री वेलि (भूमिका भाग) — प्रो० नरोत्तमदास स्वामी
३ कीर्तिलता — संपा० डा० बाबूराम सक्सेना
४ चन्द बरदाई और उनका काव्य — डा० विपिन बिहारी त्रिवेदी
५ छन्द प्रभाकर — जगन्नाथ 'भानु'
६ डिंगल में वीर रस — पं० मोती लाल मेनारिया
७ राजस्थानी गद्य साहित्य का इतिहास और विकास (अप्रकाशित) — डा० शिवस्वरूप शर्मा अचल
८ राजस्थानी भाषा और साहित्य — पं० मोती लाल मेनारिया
९ राजस्थान के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज भाग १ — पं० मोती लाल मेनारिया
१० राजस्थानी साहित्यकारों का परिचय — प्रकाशक—स्वागत समिति १२ वां अधिवेशन अ० भा० हिन्दी साहित्य सम्मेलन जयपुर
११ वीर रस का शास्त्रीय विवेचन — बटे कृष्ण
१२ वीर सतसई (भूमिका भाग) — डा० कन्हैयालाल सहल
१३ संस्कृति गद्य मञ्जरी — प्रो० नरोत्तमदास स्वामी
१४ संस्कृत साहित्य का इतिहास — बलदेव उपाध्याय
१५ हिन्दी साहित्य का इतिहास — आ० रामचन्द्र शुक्ल
१६ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास — डा० रामकुमार वर्मा
१७ हिन्दी साहित्य का आदिकाल — डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी
१८. हिन्दी जैन-साहित्य परिशीलन भाग २ — नेमी चन्द्र शास्त्री
१९. हिन्दी वीर-काव्य — डा० टीकमसिंह तोमर
२० हिन्दी काव्यालंकार सूत्र (दण्डी) — संपा० डा० नगेन्द्र
२१ हिस्ट्री ऑव संस्कृत लिट्रचर — ए० बी० कीथ
२२ इन्ट्रोडक्शन टू प्राकृत कोशग्रन्थ — ए० सी० वुलनर
२३ उर्दू-हिन्दी कोश — संपा० मुहम्मद मुस्तफा
२४ हिन्दी साहित्य कोश — संपा० डा० धीरेन्द्र वर्मा आदि

राजस्थानी भाषा के ग्रंथ

२५. केहर प्रकाश — कविवर बक्तावर
२६ रघुनाथ रूपक — मंछ कवि
२७. रघुवर जस प्रकाश — संपा० सीताराम लालस
२८ राजस्थानी साहित्य संग्रह भाग १ — संपा० प्रो० नरोत्तमदास स्वामी
२९. वचनिका रा० रतनसिंघजी री महेसदासोतरी — संपा० डा० टैसीटोरी
३० वचनिका रा० रतनसिंघजी री महेसदासोतरी — संपा० काशीराम शर्मा एवं डा० रघुवीरसिंह
३१ मंझनदास लीची री वचनिका — (हस्तलिखित) सिवदास पाठक
३२ मंझनदास लीची री वचनिका — संपा० दीनानाथ शर्मा
३३ मंझनदास लीची री बात — (हस्तलिखित)

इतिहास ग्रंथ

३४ उदयपुर राज्य का इतिहास — डा० गौरीशंकर हीराचंद ओझा
३५ वीर-विनोद — कविराजा श्यामलदास
३६ मारवाड़ राज्य का इतिहास — जसवंतसिंह बहलोत
३७. रतलाम का प्रथम राज्य — डा० रघुवीरसिंह
३८. हिस्ट्री ऑव औरंगजेब १ २ — डा० यदुनाथ सरकार
३९ औरंगजेब (हिन्दी) — डा० यदुनाथ सरकार
४० राजस्थान — कर्नल टॉड
४१ इण्डियन एफ़ीमेरीज — एस० के० पिल्लई
४२ निज़ामुद्दीन कृत 'तबक़ात-ए-अकबरी' — अंग्रेजी अनुवाद खण्ड ३
४३ तारीख़-फ़रिश्ता' ब्रिग्ज कृत — अंग्रेजी अनुवाद खण्ड १, ८
४४ याहया कृत 'तारीख़-ए-मुबारकशाही — अंग्रेजी अनुवाद

पत्र-पत्रिकाएँ

राजस्थान भारती भाग ५ अंक १ जनवरी १९५१
राजस्थानी भाग २
लोक-पत्रिका वर्ष १२ अंक २ सितम्बर १९६०
जरनल ऑव दी रॉयल एशियाटिक सोसायटी [illegible]
ए डिक्शनरिटिक केटलॉग ऑव कॉइन एण्ड [illegible]
पॉर्ट सैकण्ड कॉइन सीरीज भाग १ [illegible]

राजस्थानी भाषा के ग्रंथ

२५. केहर प्रकास — कविवर बख्तावर
२६ रघुनाथ रूपक — मंछ कवि
२७ रघुवर जस प्रकास — संपा० सीताराम लालस
२८ राजस्थानी साहित्य संग्रह भाग १ — संपा० प्रो० नरोत्तमदास स्वामी
२९ वचनिका रा० रतनसिंघजी री महेसदासोतरी — संपा० डा० टेसीटोरी
३० वचनिका रा० रतनसिंघजी री महेसदासोतरी — संपा० मनीराम शर्मा एवं डा० रघुवीरसिंह
३१ अचलदास खीची री वचनिका — (हस्तलिखित) सिवदास गाडण
३२ अचलदास खीची री वचनिका — संपा० दीनानाथ खत्री (हस्तलिखित)
३३ अचलदास खीची री बात

इतिहास ग्रंथ

३४ उदयपुर राज्य का इतिहास — डा० गौरीशंकर हीराचंद ओझा
३५ वीर-विनोद — कविराजा श्यामलदास
३६. मारवाड़ राज्य का इतिहास — जयसिंह गहलोत
३७. रतलाम का प्रथम राज्य — डा० रघुवीरसिंह
३८. हिस्ट्री ऑव औरंगजेब १ २ — डा० यदुनाथ सरकार
३९ औरंगजेब (हिन्दी) — डा० यदुनाथ सरकार
४० राजस्थान — कर्नल टॉड
४१ इण्डियन एफ़ीमेरीज — एस० के० पिल्लई
४२ निज़ामुद्दीन कृत 'तबक़ात-ए-अकबरी' — अंग्रेजी अनुवाद खण्ड २
४३ तारीख़-फ़रिश्ता' ब्रिग्ज कृत — अंग्रेजी अनुवाद खण्ड १ ४
४४ याहया कृत 'तारीख़-ए-मुबारकशाही' — अंग्रेजी अनुवाद

पत्र-पत्रिकाएँ

राजस्थान भारत भाग ३ अंक १ जनवरी १९५६
राजस्थानी भाग २
लोक-पत्रिका वर्ष १२ अंक २ दिसम्बर १९६०
जरनल ऑव दी रॉयल एशियाटिक सोसायटी ऑव बंगाल भाग १२ वर्ष १९३६
ए डिसक्रिप्टिव कैटलॉग ऑव बार्डिक एण्ड हिस्ट्रीकल मैनुस्क्रिप्ट्स
पार्ट सेकण्ड बार्डिक पोइट्री भाग १ बीकानेर स्टेट